प्रीतिरसावतार महाभावनिमग्न श्रीराधा बाबा

(प्रथम भाग)

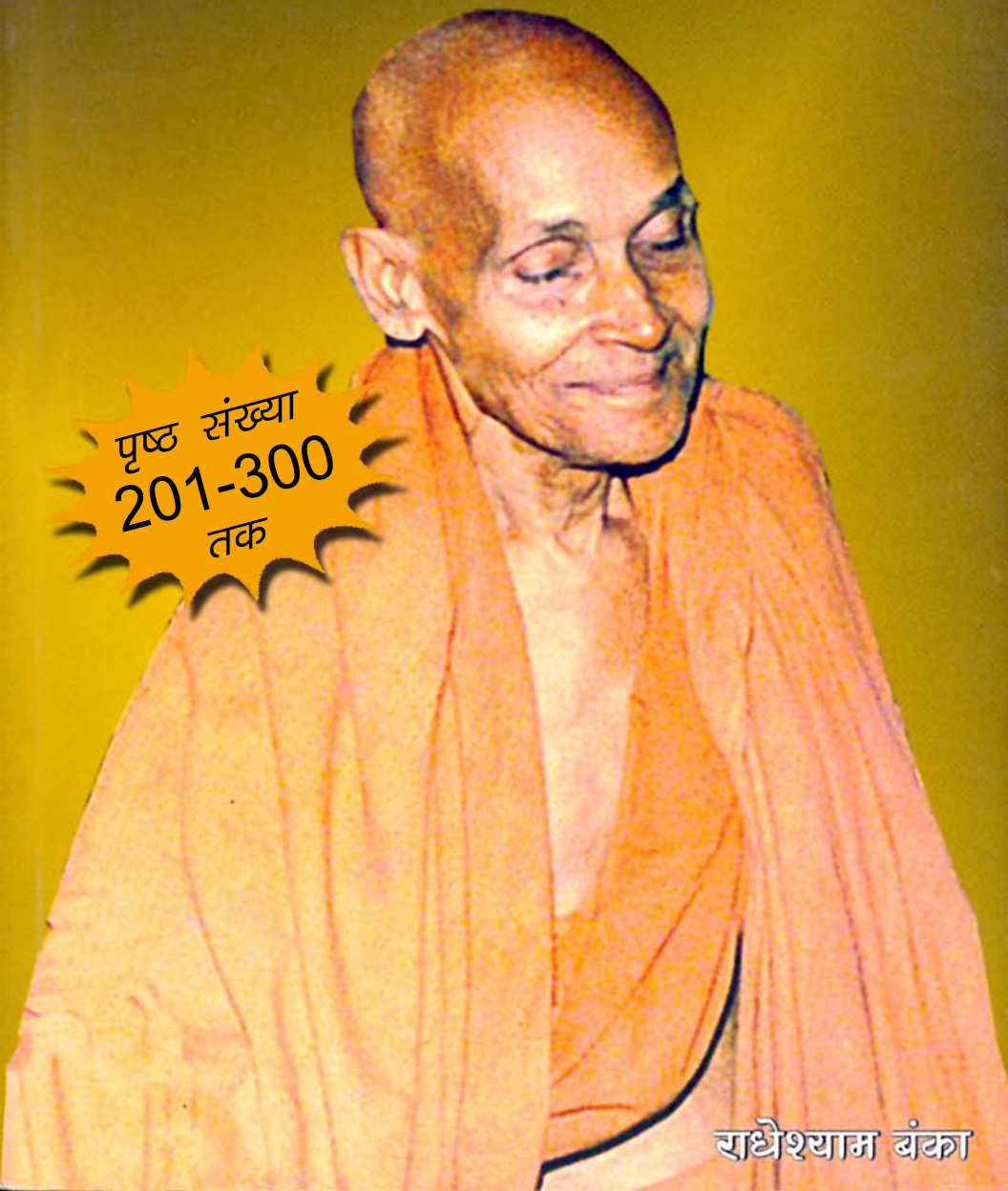

पृष्ठ संख्या 201-300 तक

राधेश्याम बंका

हो सके, कम लिखना पड़े।

पूज्य श्रीसेठजी ऐसा चाहते थे कि बाबा बाइस घंटे मौन रहें तथा दो घंटे प्रवचन दिया करें, जिससे गीता-प्रचारके द्वारा लोक-संग्रहका कार्य सुन्दर प्रकारसे हो सके। श्रीसेठजी समय-समयपर बाबासे निवेदन करते रहते थे, इसी आशामें कि न जाने कब उत्प्रेरणसे बात बन जाये, तीर लक्ष्य-बिन्दुपर लग जाये और बाबा प्रवचन देना आरम्भ कर दें। जब-जब श्रीसेठजी प्रवचन देनेकी बात चलाते, तब-तब बाबा किनारा काट जाते, परंतु उन्होंने ऐसा कभी नहीं बताया कि मेरा मौन-व्रत श्रीपोद्दार महाराजके संकेतके अनुसार है। एक बार कर्णवासमें बाबाके सामने बड़ी उलझनपूर्ण परिस्थिति उत्पन्न हो गयी। कर्णवासमें श्रीसेठजीका सत्संग-सत्र चल रहा था। वहींपर बाबूजी और बाबा भी थे। श्रीसेठजीने बाबासे जब प्रवचन देनेके लिये निवेदन किया तो बाबाने विनम्र शब्दोंमें विवशता व्यक्त करते हुए कहा – मैं इस बातका अधिकारी नहीं कि प्रवचन दूँ और प्रवचन देकर लोगोंको सन्मार्गपर चलनेके लिये प्रेरित करूँ।

बाबाकी बात सुनकर सेठजीको थोड़ा भावावेश हो आया और उन्होंने कहा – आप कहें तो मैं अभी आपको अधिकारी बना दूँ।

श्रीसेठजीके मुखसे इन शब्दोंको सुनकर बाबा बड़े धर्म-संकटमें पड़ गये। श्रीसेठजीको क्या उत्तर दिया जाय, इसीके सोचने-विचारनेमें समय निकलता चला जा रहा था। इस अवसरपर जो-जो व्यक्ति वहाँ उपस्थित थे, सभी बड़ी उत्सुकताभरी दृष्टिसे बाबाकी ओर देखने लग गये। वे सुनना चाहते थे कि बाबा क्या उत्तर देते हैं। समीपस्थ सभी लोगोंकी उत्सुकता स्वाभाविक थी। वे लोग अच्छी प्रकार जान रहे थे कि महागम्भीर श्रीसेठजीने आज वह बात अपने मुखसे कह दी है, जो वे स्वभावतः कभी किसीसे कहते ही नहीं और यह एक परम दुर्लभ अवसर है। श्रीसेठजी जैसे सिद्ध संतने स्वयं आगे होकर पात्रता प्रदान करनेकी बात कही है और ऐसा स्वर्ण अवसर फिर कभी भविष्यमें आनेवाला है नहीं। लोगोंके मनमें उत्सुकता भरी हुई थी, पर बाबाके मनमें उलझन खड़ी हुई थी। इसीमें कुछ क्षण निकल गये। फिर सोच-विचारमें पड़े हुए बाबासे श्रीसेठजीने कहा – स्वामीजी! मैंने अधिकार-प्रदान करनेकी जो बात कही थी, उसे मैं अब वापस लेता हूँ। यदि आप 'हाँ' कह देते तो मेरे ऊपर बड़ी जिम्मेदारी आ जाती।

श्रीसेठजीके इन शब्दोंको सुनकर सभी समीपस्थ लोग खिन्न हो गये। उन लोगोंके मनमें बाबाके प्रति नितान्त खेदभरी सहानुभूति उमड़ने लगी कि बाबाने एक अति सुन्दर स्वर्ण अवसर अपने हाथसे खो दिया। वे लोग चाहे जो सोचें, पर बाबा तो मौन और निर्विकार बैठे रहे। सहानुभूतिसे भरे हुए उन लोगोंको भला क्या पता कि बाबाके मानसका स्तर कैसा है? बाबाको श्रीसेठजीके सामर्थ्यपर तनिक भी संदेह नहीं था। बाबा भलीभाँति जानते थे कि श्रीसेठजी एक सिद्ध संत हैं और वे अपने संकल्पसे किसी अनधिकारीको पूर्ण अधिकारी बना सकते हैं, परंतु बाबाके मनका निश्चय यह था कि यदि कुछ लेना है तो वह एक मात्र लेना है श्रीपोद्दार महाराजसे, जिनको स्वयं व्रजेन्द्रनन्दन भगवान श्रीकृष्णने सचल वृन्दावन बतलाया है और जिनके साथ नित्य रहनेका संकेत देकर एक ऐसा परम निर्मल स्नेह-सम्बन्ध स्थापित किया है, जो सर्वथा-सर्वथा अतीत है मेरे-तेरेसे, देश-कालसे, जन्म-मृत्युसे, इह-परसे। ऐसे परमात्मीय महाभागवत श्रीपोद्दार महाराजपरसे दृष्टि हटाकर अन्यकी ओर देखनेका अर्थ है प्रीतिकी उज्ज्वलताको धूमिल कर देना, समर्पणकी चादरपर धब्बा लगाना। अन्यकी आशासे आस्थाकी आनपर आँच आती है। अन्यके द्वारसे प्राप्त परिपोषण निष्ठाके लिये कलंक है। विश्व-वन्दनीया पुण्य-सलिला भगवती गंगाजी चाहे जितनी महान और पवित्र हों, परंतु चातकके लिये गंगा-जल नहीं, एक मात्र स्वातिजल ही ग्राह्य है। अन्याश्रयसे अनन्यता खण्डित होती है। 'भक्त' वह जो 'विभक्त' न हो। अन्यके सहयोगकी स्वीकृति एकाश्रयका विघातक है। इस प्रकारके विचारोंके प्रवाहने ही धर्म-संकटकी विकट स्थिति बाबाके सामने उपस्थित कर दी थी। एक ओर थी सच्चे प्यारकी टेक और दूसरी ओर था सिद्ध संतका प्रस्ताव, इस प्रकारके उलझनमें पड़े हुए बाबाको उन्हीं सर्व-उर-प्रेरक व्रजेन्द्रनन्दन भगवान श्रीकृष्णने धर्म-संकटसे उबार लिया। उबार लिया श्रीसेठजीको प्रेरणा देकर कि अपने शब्द वापस ले लो। ज्यों ही श्रीसेठजीने अपने शब्द वापस लिये, बाबाके एक-निष्ठ मनको बड़ी शान्ति मिली। उस शान्तिकी परमातिपरम सात्त्विकताकी कल्पना भी उन सहानुभूति करनेवाले लोगोंके लिये असम्भव थी।

* * * * *

गंगा-स्नान के लिए प्रस्तुत

भाव भरा वन्दन

आन्तरिक मान्यताएँ : अन्तरंग लीलाएँ

बाबूजी अपने पूर्वजोंके नगर रतनगढ़में दिसम्बर १९३९ से लेकर जून १९४५ तक रहे। वहाँ पूर्वजोंकी हवेली है, उसीमें बाबूजी सपरिवार रहा करते थे। बाबूजीके साथ बाबा भी वहीं थे। रतनगढ़-निवासकी अवधिका बाबाके जीवनमें कम महत्त्व नहीं है। इस अवधिके प्रथम चार वर्षतक बाबा श्रीमञ्जुलीला-मञ्जरी-भावमें प्रतिष्ठित रहे। बाबा भाव-सिन्धुमें उत्तरोत्तर गहरे उतरते चले गये। बाबाका तन-मन-जीवन सब कुछ भाव-सिन्धुमें निमग्न रहता था। सूर्योदय और सूर्यास्तसे बाबाकी दैनिक जीवन-चर्या परिचालित अवश्य रहती थी, पर सत्य तो यह है कि उन्हें न दिवसके आनेका पता था और न रात्रिके जानेका पता।

कुछ अकथ कथा है नेह की।
भोर साँझ अरु साँझ भोर कुछ सुधि नहीं आवत गेह की।।
परे रहै नित प्रेम सिंधु में भई औरे दुति देह की।
श्रीहरिप्रिया निरखि नैननि में लगिय रहै झरि मेह की।।

महावाणीकार श्रीहरिप्रियाजीने उपर्युक्त पंक्तियोंमें श्रीराधाकृष्ण-चरणारविन्दके महानुरागी रसिककी जिस भाव-दशाका चित्रण किया है, वह दशा बाबाके जीवनकी एक यथार्थ स्थिति थी। जो लोकातीत श्रीराधाकृष्णलीलामें नित्य-निरन्तर सर्वथा निमज्जन कर रहा हो, उसे लोक और परलोकसे भला क्या प्रयोजन?

इस अवधिमें किसी अचिन्त्य विधानसे एक ऐसा हेतु उपस्थित हो गया, जो बन गया निमित्त बाबाकी भाव-दशाका परिचय प्रदान करनेवाला। यदि यह हेतु उपस्थित नहीं होता तो हम लोगोंको परिज्ञान ही नहीं हो पाता कि बाबा परम उज्ज्वल एवं परम मधुर भाव-सिन्धुकी कैसी-कैसी लीला-लहरियोंमें संतरण कर रहे हैं।

सन् १९४१ ई. में बाबूजीकी लाडली सुपुत्री सावित्रीबाई का श्रीपरमेश्वरप्रसादजी फोगलासे विवाह हुआ। विवाहके कुछ समय बादसे श्रीपरमेश्वरप्रसादजीके पूज्य पिताजी श्रीशिवभगवानजी फोगलाको जब अवकाश मिलता, तब वे बाबूजीके पास आ जाया करते थे। श्रीशिवभगवानजी लौकिक दृष्टिसे थे तो बाबूजीके समधी, परंतु आध्यात्मिक दृष्टिसे बाबूजीके प्रति उनके मनमें बड़ा आदर-भाव था।

बाबूजीके भक्त-जीवनकी उनके हृदयपर गहरी छाप थी। इसी आदर-भावके कारण उन्होंने अपने सुपुत्रका सम्बन्ध बाबूजीकी सुपुत्रीसे किया था। श्रीशिवभगवानजी चाहते थे कि मेरा जीवन प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्णकी भक्ति-भावनासे सराबोर हो उठे और वे अपनी समझ और शक्तिके अनुसार साधनामें जुटे भी रहते थे। साधनाके आसनपर बैठते ही और उस आसनपरसे उठनेके बाद भी उनके मनमें भाँति-भाँतिके विविध प्रश्न उभरते रहते थे। जब-जब साधनापरक प्रश्न उभरते, तब-तब वे समाधान प्राप्त करनेके लिये बाबूजीके पास आया करते थे और वे प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्ण एवं वृन्दावनी उपासनासे सम्बन्धित अनेकानेक बातें बाबूजीसे पूछा करते थे।

समधी होनेके कारण बाबूजीको कुछ बतलानेमें संकोच होता था, अतः उनके समाधानके लिये बाबूजीने एक मध्यम मार्ग अपनाया। बाबूजी एक दिन श्रीशिवभगवानजी फोगलाको लेकर बाबाके पास गये और उनसे कहा – ये मेरे लिये परम सम्माननीय हैं। इनके मनमें साधना सम्बन्धी कुछ जिज्ञासाएँ हैं और ये जिज्ञासाएँ हैं साधन-पथपर अग्रसर होनेकी दृष्टिसे। सच्चे जिज्ञासुको समाधान मिलना ही चाहिये। साध्य और साधनाके सम्बन्धमें ये जो कुछ पूछें, वह सब आप इन्हें बतलाया करिये तथा इन्हें श्रीकृष्ण-लीला भी सुनाया कीजिये।

बाबाने कहा – आपका इतना कथन ही पर्याप्त है। आपके कथनानुसार अवश्य ही इन्हें बतलानेका प्रयास करूँगा।

सन् १९४२-४३ में श्रीशिवभगवानजीका बाबासे यह सम्पर्क एक परम सुन्दर हेतु बन गया और इस निमित्तसे अनेक गम्भीर तथ्योंके व्यक्त हो सकनेकी परिस्थितिका निर्माण हो गया। श्रीशिवभगवानजीकी जिज्ञासाओंका समाधान प्रस्तुत करनेके लिये बाबा अपनी आन्तरिक मान्यताएँ एवं अपनी अन्तरंग लीलाएँ उन्हें बतलाया करते थे। इन दिनों बाबा मौन तो थे ही, अतः वे लिख-लिख करके श्रीशिवभगवानजीको समझाया करते थे। यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि जिन पृष्ठोंपर बाबाने लिखा, वे पृष्ठ सुरक्षित रख लिये जाते थे। यदि वे तथ्य लिखित रूपमें सुरक्षित नहीं रहते तो उन सिद्धान्तोंकी और उन लीलाओंकी प्राप्ति किसी भी प्रकारसे सम्भव नहीं थी।

बाबाने व्रज-भावकी साधनासे सम्बन्धित जो सिद्धान्त बतलाये और

साधकोंके लिये सहायक सिद्ध होनेवाले जो सुझाव दिये, वे कई वर्षों बाद 'कल्याण' पत्रिकामें क्रमशः प्रकाशित होने लग गये। 'कल्याण' पत्रिकामें ये 'बातें' मार्च १९५७ से लेकर दिसम्बर तक 'सत्संग-सुधा'के शीर्षकसे छपती रहीं। ये 'बातें' इतनी अधिक श्रेष्ठ एवं उपयोगी थीं कि इनको पढ़कर बहुत लोगोंने पुस्तकाकार प्रकाशित कर देनेके लिये बाबूजीसे अनुरोध किया। इसी अनुरोधका परिणाम था कि गीताप्रेससे वे 'बातें' पुस्तक रूपमें प्रकाशित हो गयीं। पुस्तकका नाम है 'प्रेम-सत्संग-सुधा-माला'।* व्रजभावके न जाने कितने रसोपासकोंके लिये यह पुस्तक एक प्रेरणा-ग्रन्थ है।

बाबाने श्रीशिवभगवानजीको जिस प्रकारसे व्रजभावकी साधनासे सम्बन्धित सैद्धान्तिक पक्षको लिख-लिख करके बतलाया, उसी प्रकारसे श्रीराधाकृष्णकी अनेक अन्तरंग लीलाएँ भी बतलायीं। बाबाने जो स्वानुभूत लीलाएँ लिखकर श्रीशिवभगवानजीको बतलायी थीं, इसके पीछे बाबूजीकी आज्ञाके पालनका भाव मुख्य रूपसे प्रबल था। जिनके लिये बाबाने ये लीलाएँ लिखीं, उनकी पात्रताको देखते हुए बाबाकी लेखनी रह-रह करके संकुचित हो जाया करती थी। श्रीशिवभगवानजीके मनमें व्रजभावके गम्भीर रहस्योंका ज्ञान प्राप्त करनेकी चाह थी और साधना करनेका चाव भी था, उस चाह और चावके होते हुए भी उनके हृदयका धरातल ऐसा नहीं था, जो उन भावोंकी दिव्यताको सर्वांशमें हृदयंगम कर सके। सच्ची चाह और सच्चा चाव होनेके बाद भी परिपक्वावस्था सतत साधनाके उपरान्त ही आती है और कई बातें तो ऐसी होती हैं, जो अति श्रेष्ठ स्तरके साधकके सामने ही कहनी उचित होती हैं। वर्तमानमें श्रीशिवभगवानजीके स्तरको देखते हुए बाबाको कई बार संकोच होता था, परंतु एक महासिद्ध संतकी

*एक बार बाबासे 'प्रेम-सत्संग-सुधा-माला' पुस्तकके बारेमें चर्चा हो रही थी तो बाबाने बतलाया था – जितनी 'बातें' इस पुस्तकमें छपी हैं, वह तो नितान्त अल्पांश हैं। इससे लगभग बीस गुना अधिक बातें लिखी गयी थीं, परंतु इन गम्भीर तथ्योंके अधिकारी हैं ही कितने? निर्देश तो यह दिया गया था कि सारे पृष्ठ नष्ट कर दिये जायें, किन्तु संयोगसे किसीके पास इतनी 'बातें' बची रह गयीं। सन् १९५६ में काष्ठ मौन ले लेनेके बाद श्रीपोद्दार महाराजने स्वजनोंके अत्यधिक आग्रहपर इन बची हुई 'बातों'को 'कल्याण' पत्रिकामें छापना आरम्भ कर दिया।

आज्ञाका पालन भी आवश्यक था। प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्णकी परम रसमय एवं सर्वथा लोकातीत युगल लीलाओंके जो-जो दृश्य बाबाकी दृष्टि-पथपर अवतरित हुए और जो-जो संवाद उनके श्रुति-पुटके विषय बने, उन सबका पर्याप्त अंश बाबाने लिखा ही नहीं। वैसे-वैसे गम्भीर रहस्यमय अंशके पठन एवं श्रवणकी पात्रताके होनेका प्रश्न बाबाके सामने था। उन लीलाओंको पढ़नेवाला या सुननेवाला चाहे वह कोई भी हो, यदि उसने अपनी आन्तरिक दृष्टिको मलरहित, सत्त्वसम्पन्न तथा स्नेहस्निग्ध नहीं बना लिया है तो उन-उन पाठकों-श्रोताओंके द्वारा निज-निज दृष्टि-दोषके कारण यह सम्भव ही नहीं कि वे इन दिव्य लीलाओंकी निर्दोषता-निर्मलता-अनिन्द्यता-अलौकिकताकी परिधिका भी स्पर्श कर सकें। यही कारण है कि उन लीलाओंकी दिव्यता और पवित्रताको अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिये बहुतसे प्रसंग अवर्णित रह गये।

कुछ प्रसंग तो इस प्रकार अभिव्यक्त होनेसे रह गये और कुछ लीलाओंकी अभिव्यक्ति चाह करके भी हो नहीं पायी। बाबूजीका निर्देश मिलनेके बाद बाबाने लीला लिखनेके एक क्रमका निर्धारण किया। आठ प्रहरकी अष्टयाम लीला तथा कुछ अन्य लीलाओंको लिखनेका विचार करके ही बाबाने एक योजना बनायी थी। इस योजनाके अनुसार बाबाने ३८ लीलाओंको लिखनेका विचार किया था। उन ३८ लीलाओंमेंसे केवल २९ लीलाएँ लिखी जा सकीं।*

एक बात यहाँ बतलानी आवश्यक लग रही है कि 'केलिकुञ्ज'में प्रकाशित जितनी लीलाएँ हैं, उनमेंसे अधिकांशका लीला-स्थल श्रीराधाकुण्ड रहा है। श्रीराधाकुण्डके पार्श्वमें ही श्रीकृष्णकुण्ड भी है और संगमपर दोनों कुण्डोंका जल इधर-उधर प्रवाहित होता रहता है। बाबाकी भावनाके अनुसार श्रीराधाकुण्ड-श्रीकृष्णकुण्डकी आठ दिशाओंमें आठ कुञ्ज हैं। ये आठ कुञ्ज प्रधान अष्ट सखियोंके हैं

*इन २९ लीलाओंका संग्रह 'केलि-कुञ्ज'के नामसे गीतावाटिकासे प्रकाशित हो चुका है। 'केलि-कुञ्ज'की भूमिकामें बतलाया गया है कि वे ३८ लीलाएँ कौन-कौन-सी हैं और इनमेंसे कौन-कौन-सी लिखी नहीं जा सकीं। वह विवरण विस्तार-भयसे यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

और इन अष्ट कुञ्जोंमें ही प्रिया-प्रियतमकी अष्ट-यामीय लीलाएँ सम्पन्न होती हैं।

जिन दिनों ये लीलाएँ लिखी जा रही थीं, उस अवधिमें बाबाकी भाव-दशा असाधारण थी। भाव-दशाकी गम्भीरताके कारण बाबाको अपने कमरेके बाहर आना नितान्त अप्रिय था, परंतु श्रीशिवभगवानजीको कुछ बतलानेके लिये कमरेके एकान्तका परित्याग करना ही पड़ता था। रतनगढ़में बाबूजीकी हवेलीके बगलमें सर्राफोंकी हवेली है। अनुभूतिकी प्रगाढ़तामें बाबाको सर्राफोंवाली हवेलीके स्थानपर श्रीयमुनाजीके प्रवाहका दर्शन होता था, ऐसा प्रवाह जहाँ अथाह जल हो। बाबा स्वयं ही स्वयंको समझाया करते थे कि यहाँ श्रीयमुनाजी नहीं, सर्राफोंकी हवेली है, परंतु गहरी भाव-दशाके समक्ष यह समझ टिक नहीं पाती थी। बाबाको यही दिखलायी दिया करता था कि श्रीयमुनाजी प्रवाहित हो रही हैं। पर्याप्त समय व्यतीत हो जानेके बाद जब वह भाव शमित हुआ, तब वह हवेली, हवेलीके रूपमें दिखलायी देने लग गयी। इसी प्रकारका एक और प्रसंग है। बाबा श्रीसुदेवी-कुञ्जकी एक लीलामें निमग्न थे। यह लीला रात्रिके समयकी है। लीलामें निमग्नता होनेके कारण बाबाको हर समय रात्रि ही दिखलायी देती थी। रात्रिकी अनुभूति इतनी सघन थी कि बाबाके लिये भिक्षा करना कठिन हो गया। संन्यासीको रात्रिके समय भिक्षा नहीं करनी चाहिये। बाबा वस्तुतः भिक्षा दिनके प्रकाशमें ही कर रहे थे, परंतु बाबाको यही लग रहा था कि मैं भिक्षा रात्रिके अन्धकारमें कर रहा हूँ। दिनका उजियाला भी उजियाला नहीं लगता था, अपितु घना अन्धकार लगता था। बाबा तो भिक्षा करानेवालोंके सम्बन्धमें यही सोचा करते थे कि ये लोग कैसे हैं जो रात्रिके समय भिक्षा करवा रहे हैं। श्रीसुदेवी-कुञ्जकी लीलामें बाबा तीन दिनतक निमग्न रहे और तीन दिनतक ऐसी 'विक्षिप्तावस्था' बनी रही। उस समय बाबाकी बातको समीपस्थ लोग समझ भी नहीं पाते थे।

यह लीला तो ऐसी थी, जब कि दिवसका प्रकाश भी अन्धकारके रूपमें दिखलायी देता था। एक बार तो इससे भी अधिक विचित्र लीलाके दर्शन बाबाको हुए। उस विचित्रताका वर्णन करते हुए बाबाने बतलाया था – प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्ण मानवाकृतिमें होते हुए मानवी-मानव नहीं हैं, उसी प्रकार उस लीला-राज्यके पात्र भी पाञ्चभौतिक नहीं हैं। उनकी आकृति और कृति हम मानवोंके जैसी है, पर वे पात्र तत्त्वतः और वस्तुतः

मानवीय धरातलके हैं ही नहीं। इसी प्रकार उस लीला-राज्यके देश और काल भी हमारे जगतके देश और कालसे सर्वथा भिन्न हैं। यहाँका सूर्य तो निश्चित समयपर उगता है और अस्त होता है, परंतु उस दिव्य राज्यमें सूर्यका उदय और अस्त लीलाकी आवश्यकताके अनुसार होता है। लीलाकी सम्पन्नताके लिये सूर्य आकाशमें स्थिर रह सकता है। लीला-राज्यमें एक बार ऐसी ही बात हो गयी, जिसपर यह जगत तो विश्वास करेगा ही नहीं और जगतके सामान्य व्यक्तिकी कल्पनामें वह बात आनी ही कठिन है। एक विशाल वृत्त है। वृत्त माने गोल आकृतिवाला एक अति विशाल प्रदेश है। उस गोल प्रदेशके आधे भागमें प्रखर प्रकाश है और शेष आधे भाग में गहन अन्धकार है। प्रखर प्रकाश और गहन अन्धकार, ये दोनों एक साथ युगपत् उस लीला-राज्यमें विराजमान हैं और दोनों विराजित हैं लीलामें सहयोग देनेके लिये। वस्तुतः वह सच्चिदानन्दमय लीला-राज्य और उस राज्यकी अद्‌भुत दिव्य लीलाएँ सर्वथा लोकोत्तर एवं कल्पनातीत हैं।

हवेलीके जिस कमरेमें बैठे-बैठे बाबाने ये लीलाएँ लिखकर श्रीशिवभगवानजीको दी, उन लीलाओंके सूक्ष्म परमाणु उस कमरेके वातावरणमें अत्यधिक परिव्याप्त हो गये। जब बाबूजी और बाबा रतनगढ़से गोरखपुर आ गये थे, उस समयकी बात है। कलकत्तेके एक सज्जन रतनगढ़ गये हुए थे। उनको उसी कमरेमें ठहराया गया, जिसमें बाबा रहा करते थे। रात्रिमें शयनके समय उन सज्जनको वे लीलाएँ दिखलायी देने लगीं, जिनको बाबाने लिपिबद्ध किया था। वे रह-रह करके विस्मयमें डूबे जा रहे थे कि यह सब क्या अद्‌भुत देखनेको मिल रहा है। उन सज्जनकी जिन संतमें श्रद्धा थी, उन संतको उन्होंने अपने रात्रिवाले अनुभव सुनाये। वे संत बाबाको भली प्रकार जानते थे। उन संतने उनसे कहा – उस कमरेमें श्रद्धेय स्वामी श्रीचक्रधरजी रहा करते थे। उनका सम्पूर्ण जीवन श्रीराधाकृष्णके चरण-कमलोंपर समर्पित है। यह कमरा स्वामीजीका निवास-स्थान रहा है। उनके निवाससे कमरेका वातावरण दिव्य हो गया है और इसी कारण तुम्हें इस प्रकारकी लीला-स्फूर्तियाँ हुईं।

श्रद्धामें भीगे-भीगे वे सज्जन फिर गोरखपुर आये और बाबाको रात्रि-निवासके अपने सारे अनुभव सुनाने लगे। वे तो अपने अनुभव भाव-विभोर होकर सुना रहे थे, परंतु उन अनुभवोंको सुन-सुन करके बाबा विस्मयान्वित हो रहे थे। बाबाको विस्मय हो रहा था यह देखकर कि इन

अनजान सज्जनको भी उन लीलाओंकी अनुभूति हो उठी। बाबाने वे लीलाएँ लिखकर इन्हें नहीं, श्रीशिवभगवानजीको दी थी। इन सज्जनको तो उन लीलाओंके दर्शन और लेखनके बारेमें कुछ परिज्ञान ही नहीं था, किन्तु आश्चर्य तो यह है कि जो बाबाने लिखा था, वही सब उन सज्जनके अनुभवमें आया। लीलाके सूक्ष्म परमाणुओंसे परिपूर्ण उस कमरेका आकाश-तत्त्व इतना सशक्त हो उठा था कि उसके सम्पर्कमें आनेवाले व्यक्ति भी दिव्यानुभव करने लगते थे। 'तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि'। उस कमरेके वातावरणकी प्रभावोत्पादकताका यह एक अनोखा उदाहरण है।

* * * * *

कठिन बवासीर रोग

सन् १९४३ ई. में बाबूजी बवासीर रोगसे इतने अधिक बीमार पड़ गये कि उनको खाट पकड़ लेनी पड़ी। रोगकी भीषणता देखकर बाबूजी चिकित्सा करानेके लिये दिल्ली आये। वहाँ रोगका शमन होना दूर रहा, स्थिति और बिगड़ गयी। हालत इतनी खराब हो गयी कि बचनेकी आशा भी जाती रही। स्थितिकी गम्भीरताका समाचार पाकर लोग अन्तिम बार मिलनेके लिये और दर्शन करनेके लिये आने लग गये।

दिल्लीमें जो उपचार चल रहा था, उससे कोई लाभ नहीं देखकर कतिपय स्वजनोंने सलाह दी कि अजमेरके प्रसिद्ध चिकित्सक डा.श्रीअम्बालालजीको भी एक बार अजमेर जाकर दिखला लेनेमें क्या हानि है? बाबूजीको लेकर लोग अजमेर गये। बाबा साथमें थे ही। डा.अम्बालालजीकी चिकित्सासे बाबूजीको लाभ हुआ तथा बाबूजीके स्वास्थ्यमें सुधार आने लग गया।

तबीयत ठीक होनेपर बाबूजी अजमेरसे रतनगढ़ वापस आ गये। तबीयत तो ठीक थी, परंतु शरीरमें दुर्बलता थी। तीन माह ठीक रहे होंगे कि बवासीरका रोग पुनः उभर पड़ा। उसके भीषण रूपको देखकर एक बार फिर लोग चिन्तित हो उठे। बाबा-बाबूजी पुनः अजमेर गये। डा. श्रीअम्बालालजीके चिकित्सालयमें गुदाके फोड़ेका आपरेशन हुआ। आपरेशन सफल रहा। इन दिनों बाबूजीको बड़ा कष्ट भोगना पड़ा। स्निग्ध पदार्थका प्रयोग करनेके बाद भी बड़े कष्टसे मल-द्वारसे मल उतर पाता था।

गुदाका घाव ठीक हो जानेपर बाबूजी अजमेरसे वापस रतनगढ़ आ गये। एक दिनके बाद दूसरा दिन और एक सप्ताहके बाद दूसरा सप्ताह, इस प्रकार कई सप्ताह निकल गये। समयके व्यतीत होनेके साथ-साथ लोगोंके मनसे सारी चिन्ता अथवा सारी आशंका भी निकल गयी। बाबूजीकी अच्छी तबीयत देखकर यह स्मृति भी धूमिल होने लग गयी कि विगत छः-सात मासतक उन्होंने बहुत कष्ट पाया।

एक दिनकी बात है। बाबा रतनगढ़में अपने कमरेमें बैठे हुए थे। मध्य रात्रिका समय था। उस समय भगवान श्रीकृष्णने बाबासे कहा– यह तो तुम्हारा ही कष्ट था, जो उन्होंने अपने ऊपर लेकर भोग लिया।

यह सुनकर बाबाको बड़ा दुःख हुआ। इस रुग्णताकी अवधिमें बाबा बाबूजीके सदा पास रहे और बाबूजीके कष्टका एक-एक क्षण और एक-एक दृश्य बाबाके स्मृति-पथपर आने लगा। बाबूजीके कष्टको स्मरण करके व्यथा तो मनमें अपार थी ही, साथ ही मनमें बार-बार उभर रहा था कृतज्ञताका भाव भी कि मेरे कष्टको उन्होंने अपने ऊपर लेकर झेल लिया। अब बाबाकी आँखोंमें नींद नहीं थी, अपितु भरी हुई थी अकुलाहट। व्यथा तथा कृतज्ञताके अतिरिक्त बाबाको आश्चर्य भी कम नहीं हो रहा था। आश्चर्य हो रहा था बाबूजीकी आत्म-संगोपन प्रवृत्तिपर। बाबूजीने किसीको ज्ञात ही नहीं होने दिया कि दूसरेका कष्ट मेरेद्वारा ले लिया गया है। निज जनका आत्यन्तिक हित करनेकी भावना, फिर उस भावनाके अनुसार पूर्ण क्रियाशीलता और वह क्रियाशीलता इतने गुप्त रूपसे कि किसीको आभासतक न मिले, यदि उस भावना और क्रियाशीलताका आभास मिल गया तो वह आभारसे दब जायेगा और फिर सब कुछ किरकिरा हो जायेगा, ऐसी लोकोत्तर सदाशयताका सजीव उदाहरण कहाँ देखने-सुननेको मिलता है? कभी व्यथा, कभी कृतज्ञता, कभी दैन्य, कभी आश्चर्य, इन्हीं प्रकारके अनेक भावोंसे सारी रात बाबाका मन आलोड़ित रहा। बड़ी कठिनाईसे बाबाकी वह रात व्यतीत हुई। बाबाके अन्तरमें आतुरता थी बाबूजीसे मिलनेकी।

प्रातः शौच-स्नानसे निवृत्त होकर बाबा बाबूजीके पास गये। बाबूजी अपने सम्पादन-कार्यमें व्यस्त थे। छपनेके लिये जानेवाले लेखोंको ठीक कर रहे थे। बाबाके आते ही बाबूजीने स्नेह-सम्मानपूर्वक अपने पास बैठाया। फिर बाबासे बोले– कहिये, आज एकदम सबेरे-सबेरे कैसे आये?

बाबाने भगवान श्रीकृष्णका नाम छिपाकर शालीन भाषामें कहा – मुझे

ऐसा लग रहा है कि आपने मेरा कष्ट अपने शरीरपर झेल लिया है और इसके परिणामस्वरूप आप सात माहतक बवासीरसे बीमार रहे।

बाबाके ऐसा कहते ही बाबूजीने बड़ी गम्भीर, बड़ी रोषपूर्ण मुद्रा बना ली और झिड़कते हुए बाबासे कहने लगे – क्या कभी ऐसा हो सकता है? क्या यह सम्भव है कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिका कष्ट अपने ऊपर ले ले? ऐसा आपने कहीं देखा है क्या? आपको बैठे-बैठे व्यर्थकी बातें सूझती रहती हैं। मैं तो आपको सुबुद्ध संन्यासी समझता था, पर आप अपने एकान्तमें इसी प्रकारका व्यर्थ चिन्तन करते रहते हैं क्या?

वास्तविकताकी गोपनीयताको बनाये रखनेके लिये ही बाबूजीने बाबाको झिड़का था तथा रोषपूर्ण व्यवहार किया था। बाबूजी कुछ देरतक रोषपूर्ण भाषामें बोलते रहे तथा बाबा चुपचाप सुनते रहे। बाबाको चुपचाप देखकर बाबूजीने यही सोचा कि मेरे रोषके प्रभावमें बाबा आ गये हैं, पर बाबा मन-ही-मन सोचने लगे कि जिस उद्देश्यसे मैं यहाँ आया था, वह बात तो बनी नहीं।

कुछ क्षण और बीत जानेके बाद बाबाने अपना ढंग बदला तथा बाबूजीसे भी अधिक रोबदार-जोरदार भाषामें बोलते हुए वे कहने लगे – विश्वमें कोई शक्ति नहीं, जो मेरी बातको काट सके। मैं निराधार नहीं बोल रहा हूँ। मेरे पास अकाट्य प्रमाण है। मैं आपकी बातकी लपेटमें आनेवाला नहीं हूँ। आपका सम्पादकत्व मेरे साथ नहीं चलेगा। आप मुझे भ्रममें नहीं डाल सकते।

अब बाबूजी समझ गये कि बाबाके कथनमें दम है। ये हवामें नहीं बोल रहे हैं। अवश्य ही भगवान श्रीकृष्णने कुछ गड़बड़ मचा दी है। ऐसा लगता है कि वह छिपी बात प्रकट हो गयी है। बाबूजीके रोषका अभिनय तिरोहित हो गया। उनके नेत्रोंमें प्यार छलछला आया। उन्होंने अपने हाथकी लेखनी नीचे रख दी और अपनी दोनों हथेलीको बाबाके दोनों कंधोंपर रखकर बाबूजी बोले – क्यों, हम और आप दो हैं क्या?

पहले केवल दो नेत्र सजल थे, अब दोनोंके नेत्र सजल हो उठे। प्यारकी बूँदें टप-टप चू रही थीं। बाबा 'मूँदे सजल नयन पुलके तन'। बाबा बहुत देरतक मिलित नयन, मूक अधर, अचल अंग बैठे रहे। मूर्तिवत् बैठे-बैठे न जाने कितना समय निकल गया।

* * * * *

बाबूजी का दिव्य लोकोत्तर स्वरूप

सन् १९४१-४२ ई. में बाबाने अपने अन्तरंग निज-जनों जैसे श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी, श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारी, श्रीगोवर्धनप्रसादजी शर्मा, श्रीमोतीलालजी पारीक आदिके समक्ष पूज्य बाबूजीके सम्बन्धमें बड़े गम्भीर एवं दिव्य तथ्य व्यक्त किये थे। बाबा द्वारा लिखित वह विवरण बहुत अधिक विस्तृत है। उस लिखित विवरणका कुछ अंश यहाँ संक्षिप्त रूपमें प्रस्तुत किया जा रहा है। बाबाने अपने निज जनोंको बतलाया –

आप देखें, श्रीभाईजी (बाबूजी) को जिस दिन जसीडीह में भगवत्प्राप्ति हुई थी, उस प्राप्तिमें और आजकी प्राप्तिमें जमीन आसमानका अन्तर है। वह तो त्रिदेवोंमें सर्वोच्च एक देवके दर्शन थे। वह जो उनकी स्थिति थी, वह ऐसी थी, जैसे ध्रुवको भगवद्दर्शन। इसके बाद और भी ऊँची अवस्था हुई, श्रीकृष्ण आये। फिर और भी ऊँची अवस्था हुई, युगल सरकार आये। फिर इससे भी ऊँची अवस्था यह हुई कि श्रीराधारानीमें सर्वथा इनका अहंकार विलीन हो गया अर्थात् श्रीराधारानीके नित्य विग्रहमें ये लीन हो गये। यद्यपि यह अवस्था अनिर्वचनीय है, वाणी-मन-बुद्धिसे परेकी है, पर जहाँतक विवेचन हो सकता है, वही बात शाखा-चन्द्र-न्यायसे कही जा रही है। वह अवस्था इतनी विलक्षण है कि जिस दिन हम लोगोंमेंसे कोई सचमुच श्रीभाईजीकी कृपासे गोपीभावकी साधना करके गोपी बन जायेगा, उसी दिन वह ठीक-ठीक समझ सकेगा और फिर वह भी किसी दूसरेको समझा नहीं सकेगा। यह तो प्राप्तिकी बात हुई, पर साधनाके ऊँचे स्तरकी बात भी समझायी जा ही नहीं सकती। केवल एक ही उपाय है, उसका अनुभव करना साधनाके द्वारा। अस्तु, जो भी विवेचन है, वह बाहरी है।

अब आप सोचें, श्रीभाईजीके राधारानीमें लीन होते ही स्वयं श्रीकृष्ण इस पाञ्चभौतिक ढाँचेके धर्मी बन गये। दूसरे शब्दोंमें समझानेके लिये यह कह सकता हूँ कि मान लें, जो पाञ्चभौतिक ढाँचा दीखता है, उसके द्वारा जो व्यवहार होता है, वह तो सर्वथा उसी

ढंगसे हो रहा है कि स्वयं भगवान श्रीकृष्ण उसके अन्दर श्रीराधाकृष्णके रूपमें अभिव्यक्त हैं और फिर उनकी सर्वसमर्था शक्तिके कारण एक ही समय श्रीभाईजीके साथ श्रीराधारानीके साथ सर्वथा दिव्य सच्चिदानन्दमयी लीला करते हुए भी जड़ जगतके व्यवहारकी भी रक्षा करते हैं। एक ही समयमें, जब कि श्रीभाईजी रेडियो सुन रहे हैं, लोगोंकी दृष्टिमें यह बात रहेगी कि वे रेडियो बड़े चावसे सुन रहे हैं, पर ठीक उसी क्षण एक सर्वथा सच्चिदानन्दमयी लीला वहाँ प्रकट रूपसे चल रही है। उस लीलामें और आपमें इतना ही व्यवधान है कि पाञ्चभौतिकका पर्दा पड़ा हुआ है। जिस प्रकार समस्त वृन्दावनकी लीलाका एक चित्र खींचकर उसे एक मिट्टीके बर्तनसे ढक दें तो मिट्टीके बर्तनके भीतरका रहस्य जिसे मालूम नहीं है, उसको यही दीखेगा कि मिट्टीका पात्र है। उसके भीतर क्या है, वह जान ही नहीं सकता। वैसे ही, जिसे श्रीभाईजीके इस रहस्यका पता नहीं है, वह जान ही नहीं सकता कि इस पाञ्चभौतिक ढाँचेसे जो आवाज आती है, उदाहरणार्थ 'दूलीचन्द, दवाई लाओ तो', यह आवाज सर्वथा श्रीराधा-कृष्णकी अचिन्त्य दिव्य सर्वसमर्था शक्तिके कारण प्रारब्ध व्यवहारके लिये उनके द्वारा कही गयी है और ठीक उसी समय कही गयी है, जिस समय एक विलक्षण लीला वहाँ चल रही है। शब्दमें ताकत नहीं कि मैं समझा सकूँ। मेरी बुद्धि जिस बातको ठीक समझ रही है, वह वाणीमें आ ही नहीं सकती। वह तो सर्वथा उनकी कृपासे ही सम्भव है। आप नीचे हैं अथवा ऊँचे हैं, यह प्रश्न नहीं है। प्रश्न है कि मैं सोच कर भी उसे ठीक-ठीक भाषा-बद्ध नहीं कर पाता तो क्या करूँ? अस्तु, आप ऐसा समझें कि समस्त भूत-वर्तमान-भविष्यकी लीलाके आधारस्वरूप जो श्रीराधाकृष्ण हैं, वे स्वयं इस ढाँचेमें पाँच-सात वर्ष पहलेसे अभिव्यक्त हो गये हैं और तबतक रहेंगे, जबतक यह पाञ्चभौतिक ढाँचा चलेगा। उसमें होगा क्या कि जिसकी जैसी भावना है, उसीके अनुरूप प्रतीति होगी। कोई श्रीरामभक्त चाहे तो उसे वहाँ भी सीतारामके रूपमें ही दर्शन होगा, क्यों कि भगवान श्रीकृष्ण ही भगवान श्रीराम हैं और राधारानी ही सीतारानी हैं। ठीक-ठीक साधना पूरी होते ही इस ढाँचेकी जगह वह दिव्य लीला ही दिखेगी।

स्वयं भगवान श्रीकृष्णके अवतारमें और यहाँकी स्थितिमें अन्तर

यह है कि अवतार कालमें जो अवतरण होता है, वह पाञ्चभौतिक ढाँचेका आधार लेकर नहीं होता। वह होता है सर्वथा आत्ममायाकृत, जहाँ पाञ्चभौतिकका सम्बन्ध नहीं है। जो योगमायाका पर्दा है, वह पाञ्चभौतिक पर्दा नहीं है। अतः यहाँ जो अवतार है, उसे आप प्रकारान्तरसे ऐसा समझें कि स्वयं भगवान श्रीकृष्ण अपनी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधाके साथ आवेशावतारके रूपमें अवतरित हुए हैं और पाञ्चभौतिक ढाँचेके प्रारब्ध शेषतक यह अवतार रहेगा।

मेरी यह धारणा है कि श्रीराधारानीके साथ अभेद बिरले किसी-किसी महापुरुषका ही होता है, जिसका उदाहरण अबतक केवल श्रीचैतन्यमहाप्रभु हैं। और कोई मेरी दृष्टिमें शास्त्रमें या आधुनिक संतोंमें नहीं है। सारांश यह है कि जिस क्रमसे साधना बढ़ी, उसी क्रमसे ऊपर उठते-उठते श्रीभाईजी इतने ऊपर उठ गये कि स्वयं श्रीराधारानीका साक्षात्, जिसके लिये पद्मपुराणमें नारदजीसे स्वयं श्रीगोपीजनोंने कहा है कि इनके इस रूपका दर्शन ब्रह्मा एवं शंकरके लिये भी दुर्लभ है, उस रूपका दर्शन नारद तुम्हें हुआ है, वह दर्शन श्रीभाईजीको हुआ और फिर श्रीभाईजी उसीमें लीन हो गये। अर्थात् भक्तका जो निर्गुण अहंकार होता है, दासीका, सखी नर्म सहचरीका, सब छूटकर बिलकुल राधारानीके साथ सायुज्य लाभ प्राप्त करके कृतार्थ हो गये। जो जीव हनुमानप्रसादके कलेवरका आश्रय करके पचास वर्ष पहले पैदा हुआ था, वह 'मैं हूँ', इस अहंकारको सर्वथा 'मैं राधा हूँ' इस रूपमें विलीन करके श्रीराधारानीमें तन्मय हो गया। अब उस स्थितिके बाद वहाँ जो अन्तःकरण पाञ्चभौतिकके आश्रित है, वह सर्वथा उस सच्चिदानन्दमय राज्यके द्वारा प्रकाशित होता है। उस वागेन्द्रियमें बोली तो आती है, पर उस चिन्मय राज्यकी बोली आती है। प्रत्येक इन्द्रियोंकी प्रत्येक चेष्टा जिस चेतनके आधारपर हम लोगोंकी चलती है, अर्थात् आत्माके रहनेपर ही लिंग शरीरकी जो चेष्टा होती है, वह नहीं होकर, केवल पाञ्चभौतिकमें जो इन्द्रिय गोलक बच रहे हैं, उनमें उस राज्यका प्रकाश आता है, जो सर्वथा पूर्ण सच्चिदानन्दमय है, जीवकी तरह अणु नहीं है। इसीलिये इनके सम्पर्कमें आनेवाले पुरुषका भी ऊँचे-से-ऊँचा उज्ज्वलतम भविष्य है।

भगवानकी सर्वसमर्था शक्तिके कारण यह किसीको भी पता नहीं चलेगा, सुनकर भी विश्वास उसी मात्रामें होगा, जिस मात्रामें भजनके द्वारा इनकी कृपा प्रकाशित होकर इस बातको ग्रहण करनेमें अन्तःकरण समर्थ हो सका है। यह मैं स्वयं ऐसा अनुभव करता हूँ कि उत्तरोत्तर यह अनुभव विलक्षण होता जाता है। कई बार तो ऐसा अनुभव होता है कि मानो इनके अन्दरसे राधारानी बिलकुल एक हलका-सा नकाब डाले लीला कर रही हैं, बिलकुल एक विलक्षण-सी अनुभूति होती है, अभूतपूर्व। इस तथ्यपर विश्वास कराना मेरे बसकी बात नहीं है। यह तो श्रीराधाकृष्णके बसकी है। इतना लिखकर समझानेकी मैं जो चेष्टा कर सका, वह यही बात है, जो वहाँ, मेरे विश्वासके अनुसार, चाहे वह अधूरा विश्वास ही क्यों न हो, जो वहाँ उस ढाँचेमें अभिव्यक्त है। इसीलिये सर्वज्ञता-सर्वसमर्थता, स्वयं भगवान श्रीराधाकृष्णकी जो-जो बातें शास्त्रोंमें आजतक कही गयी हैं और कही जायेंगी, सब-की-सब वहाँ प्रकट हैं, पर वह प्रकाशित होगी उसीके लिये, जिसका सर्वथा संशयहीन विश्वास होगा। थोड़ा-बहुत परिचय तो निश्चय ही मिल सकता है, यदि कोई सच्चा श्रद्धालु बननेकी चाह करे, क्यों कि छिपाना तो उन्हें उसीके लिये है, जो अश्रद्धालु है, श्रद्धालुके लिये छिपाना है नहीं। उसकी श्रद्धा प्रकट करनेके लिये बाध्य कर देगी। पर जो उनसे पूछेगा कि 'आप ऐसे हैं क्या?' तो मेरी समझमें पूछनेपर शायद यही उत्तर मिले कि यह भावकी बात है, मैं ऐसा नहीं हूँ।

इस सम्बन्धमें स्वयं श्रीभाईजी ऐसी-ऐसी बातें दो-तीन बार कुछ ऐसे शब्दोंमें कह गये, जिससे मेरे ऊपर यही असर पड़ा, असर ही नहीं पड़ा, बिलकुल समझमें आया कि श्रीभाईजीकी जो स्थिति मैंने बतलायी है, उसको स्वयं प्राप्त हो गये हैं। दूसरे शब्दोंमें, स्वयं राधारानीने दया करके बतला दिया कि जिसके चरणोंकी खोज कर रहे हो, वह मैं इस ढाँचेमें आ गयी हूँ। हनुमानप्रसादकी आत्मा तो मुझमें विलीन हो गयी है, उसकी जगह अब मैं अपने प्रियतम श्रीकृष्णके साथ हूँ। राधारानीके पास जाना चाहते हो तो तुम तीन सालसे उनके पास हो, केवल पाञ्चभौतिकका पर्दा है, यह उठेगा समयपर। जिस प्रकार अवतारकालमें श्रीकृष्णका विग्रह एक स्थानपर दीखकर भी

सर्वव्याप्त है, दामबन्धनलीलामें, विश्वरूपदर्शनमें इसे समझा जा सकता है, वैसे ही एक देशमें सीमित-सा दीखनेपर भी वह सर्वव्यापक है। जिस क्षण आपको या किसीको सचमुच उसका दर्शन होगा, उस समय देशका प्रश्न ही नहीं रह जायेगा। वहाँका देश बिलकुल ऐसा हो जायेगा, जो सर्वथा अनिर्वचनीय है। श्रीभाईजीने एक बार मुझसे कहा था कि दर्शन होते समय यह देश बिलकुल नहीं रहता, वह सर्वथा सच्चिदानन्दमय हो जाता है।

आपका प्रश्न जो मैंने समझा है, उत्तरमें यही बात समझें कि पाञ्चभौतिककी सीमामें तभीतक बाँध रहा हूँ, जबतक उस लीलाका दर्शन नहीं हो रहा है, क्यों कि वह लीला ही सर्वव्यापक तत्त्व है। वह आपके अन्तःकरणमें भी है, अणुमें भी है, पर वह वहाँ अभिव्यक्त है। भगवान श्रीकृष्ण जैसे एक सौ पच्चीस वर्ष तकके लिये एक देशमें अभिव्यक्त दीखते थे, वैसा दीखनेपर भी, उतने कालके लिये, समस्त रूपोंमें सब लीलाओंमें व्यापक भी थे, वैसे ही प्राप्तिके दिनसे लेकर प्रारब्धके शेषतक श्रीयुगल सरकारकी सच्चिदानन्दमयी लीला उस ढाँचेका पर्दा देकर सबके सामने अभिव्यक्त है। अभिव्यक्त होते हुए भी वह सर्व व्यापक है। पता नहीं समाधान हुआ कि नहीं। इसमें भी गोलोक है, पर अभिव्यक्त नहीं है।

इस समय तो मेरा दिमाग भर गया है। आप पूछते थे कि श्रीभाईजीकी दृष्टि लोगोंपर पड़ेगी तो उसका और भी विलक्षण फल होगा। मैं क्या जवाब देता और अभी आपको समझाना कठिन है। मतिभ्रम हो जायगा। श्रीभाईजी इस जगतको कैसे देखते हैं, उनकी कैसी दृष्टि इस जगतके किसी प्राणीपर पड़ती है, इसका उत्तर यह है कि स्वयं भगवान श्रीराधाकृष्ण जिस दृष्टिसे जगतको देखते हैं, उसी दृष्टिसे श्रीभाईजीके पाञ्चभौतिक ढाँचेका नेत्र-गोलक भी देखता है। वह दृष्टि कैसी है, वह बुद्धिके परेकी है।

देखें मेरी समझ बहुत अल्प है, पर जो कुछ भी पढ़ा-सुना है, सोचा-समझा है, उसके आधारपर मैं बहुत संक्षेपमें आपके समक्ष निवेदन करता हूँ। भगवत्प्रेमका मार्ग बड़ा ही विचित्र होता है। इसकी ऊँची अवस्थामें जब कोई महापुरुष पहुँचता है, तब उसकी अवस्था

इतनी विलक्षण, इतनी विचित्र हो जाती है कि उस अवस्थाको बिरले प्राणी, जिनपर श्रीकृष्णकी विशेष दया होती है, वे ही समझ पाते हैं। उस अवस्थाको लिखकर-सुनकर-पढ़कर कोई समझ ही नहीं सकता। वह एक अजब पागलकी-सी अवस्था होती है। उस अवस्थामें पहुँचे हुए महापुरुषके द्वारा ऐश्वर्य मार्गकी भक्ति, ऐश्वर्य मार्गके द्वारा होनेवाली भगवत्सेवाका आचरण नहीं होता। वह इतना ऊपर एक मधुरतम राज्यमें जा पहुँचता है कि उसकी कोई तुलना ही नहीं होती।

श्रीभाईजीकी भीतरी दशा, भीतरी अवस्था क्या है, ये तो केवल ये ही जानते हैं, मुझे बिलकुल पता है ही नहीं, पर वैष्णव शास्त्रोंको पढ़कर तथा और भी कई कारणोंसे यह मेरा अनुमान है कि श्रीभाईजी ठीक उसी अवस्थामें पहुँच गये हैं। उनका जो स्वभाव पहले था, वह बिलकुल बदल गया है, उसपर रंग चढ़ते-चढ़ते इस जगतकी स्मृति ही अन्तःकरणमें बहुत कम, शायद नहीं ही होती होगी।

आप भागवत आदि पढ़ें, फिर पता लगेगा। प्रेमीकी बात तो दूर रही, जो असली ब्रह्म-प्राप्त होता है, उसकी भी ऐसी दशा हो जाती है। जैसे मदिरा पीकर मनुष्य अपने वस्त्रोंकी सुधि भुला देता है, वैसे ही असली ब्रह्म-प्राप्तको यह भी पता नहीं रहता कि मेरा शरीर बैठा है, चल रहा है, खा रहा है, क्या कर रहा है। यह स्पष्ट श्लोक भागवतमें है।

और सच मानिये, जो श्रीभाईजीको प्रेमकी अवस्था प्राप्त है, वह इस ब्रह्म-प्राप्तिके बादकी अवस्थाका प्रेम है। ऐसी अवस्थामें जो इनका शरीर ठीक-ठीक व्यवहारका काम करता है, उसे देखकर यही बात समझमें अनुमानसे आती है कि खास श्रीकृष्णकी इच्छा है, जगतका कोई मंगल कराना है, जिससे वे उनके अन्तःकरणके द्वारा स्वयं इस प्रकारकी आश्चर्यमयी घटना कर रहे हैं, अर्थात् वहाँ उस स्थितिमें पहुँचकर भी इनके अन्तःकरणका कार्य जगतकी दृष्टिमें ठीक-ठीक हो रहा है।

असलमें तो मैंने जो लिखा है, वह सर्वथा ऊपर-ऊपरकी बात है। भीतरकी स्थितिको समझानेका कोई उपाय ही नहीं है। सच मानिये, उस अवस्थाका मुझे तो ज्ञान ही नहीं है, पर जो अनुमान

होता है, वह भी समझाना चाहनेपर भी समझा नहीं सकता। उसे कैसे समझाऊँ? ऐसी कोई युक्ति या दृष्टांत ही ठीक-ठीक नहीं मिलता। संत और भगवान एक ही होते हैं। राधा एवं श्रीकृष्ण एक ही हैं, पर प्रेम देनेका कार्य स्वयं श्रीकृष्ण नहीं करते, राधारानी करती हैं, संत करते हैं। इसीलिये श्रीभाईजीकी स्थितिकी विलक्षणता तो कुछ ऐसी है कि भगवान ही दो रूपोंमें अब इनके पाञ्चभौतिक द्वारा काम करते हैं।

आजतक इस पारमार्थिक स्थितिका वर्णन मैंने किसी शास्त्रमें नहीं पढ़ा है और चैतन्य महाप्रभुके सिवा किसी भी भक्तके जीवनमें इस स्थितिका संकेत प्राप्त नहीं होता। मैं यह नहीं कहता कि जगतके इतिहासमें श्रीभाईजीका पहला उदाहरण है। ऐसे कुछ बिरले महात्मा हुए होंगे, पर वह बात प्रकाशमें नहीं आयी और ऋषियोंने जान-बूझकर, मालूम पड़ता है, शास्त्रोंमें इस स्थितिका उल्लेख नहीं किया और कहीं हुआ भी हो तो मेरी दृष्टिमें नहीं आया।

* * * * *

एक आन्तरिक मान्यता

बाबूजीके सम्बन्धमें बाबाकी जो सर्वथा निजी और नितान्त आन्तरिक मान्यता थी, उसे वे सदा उन्मुक्त स्वरमें कहा करते थे। बाबूजी तो स्वयंको अत्यधिक छिपाये रखना चाहते थे, परन्तु उनके वास्तविक गौरवपूर्ण स्वरूपको देखा और घोषित किया बाबाकी नीर-क्षीर-विवेकी संत-दृष्टिने।

भगवानके अवतरणका हेतु होता है साधु-परित्राण और धर्म-संस्थापन। ये कार्य भगवानके निजी विशेष कार्य हैं। इसी प्रकारका कार्य बाबूजीके द्वारा हुआ। एक बार भावाप्लावितावस्थामें उनके द्वारा इस तथ्यकी सत्यता अनायास अभिव्यक्त हो उठी कि प्रभुकी मेरे द्वारा 'कुछ विशेष कार्य' करवानेकी योजना थी। आर्ति-निवारण, भक्ति-प्रचार, साधु-सेवा, गो-संवर्धन, शास्त्र-संरक्षण, साहित्य-प्रकाशन आदि-आदि कार्यकलापोंके रूपमें उस विशेष कार्यके सम्पन्न होनेकी झलक मिलती है। बाबूजीको अपने प्रयासमें अभूतपूर्व सफलता मिली। उनके भक्ति-प्रचार एवं धर्म-संस्थापनके कार्यको देखकर श्रीगुरुजी

(राष्ट्रीय-स्वयंसेवक-संघके दिवंगत सरसंघचालक श्रीमाधवराव सदाशिवजी गोलवलकर) ने एक बार कहा था कि अनास्था और अनैतिकतासे आच्छादित

आजके अन्धकारपूर्ण युगमें आस्तिकता और सात्त्विकताकी प्रतिष्ठाके लिये जोकार्य श्रीपोद्दारजीने किया है, वह अद्वितीय है। सर्व साधारण लोगोंके मनमें धर्म-भावना जगानेके लिये, प्रभुके प्रति विश्वासको सुदृढ़ करनेके लिये, विभिन्न मत-मतान्तरोंमें सामञ्जस्यको स्थापित करनेके लिये और शील-सदाचारके प्रति निष्ठावान बनानेके लिये श्रीपोद्दारजी द्वारा किया गया कार्य अपने ढंगका अनूठा और अकेला है।

श्रीगुरुजीका यह वक्तव्य बाबूजीके व्यक्तित्वके सम्बन्धमें एक उल्लेखनीय तथ्य है, परन्तु इससे भी अधिक गम्भीर और गौरवपूर्ण उद्‌गार हैं श्रीराधा बाबाके। बाबूजीके आध्यात्मिक व्यक्तित्वको उद्‌भासित करनेके लिये अपनी अगाध मान्यताको व्यक्त करते हुए श्रीबाबाने कहा—

(१) धार्मिक ग्लानि और ह्रासको दूर करनेके लिये धर्म-प्रचारका जो कार्य आद्यशंकराचार्य-रामानुजाचार्य जैसे आचार्यों द्वारा हुआ,

(२) जन-जनके आचार-विचार-व्यवहारको नियन्त्रित-सुसंस्कृत करनेके लिये समाज-जीवन-सम्बन्धी प्रश्नोंपर व्यवस्था देनेका जो कार्य मनु-याज्ञवल्क्य जैसे स्मृतिकारों द्वारा हुआ,

(३) हृदयकी कोमल भक्ति-भावनाओंके तरंगित हो उठनेपर भक्ति-काव्यकी रचनाका जो कार्य तुलसीदास-सूरदास जैसे भक्त-कवियोंद्वारा हुआ और

(४) श्रीराधा-माधवके लीला-सिन्धुमें नित्य-निरन्तर निमग्न रहनेके आदर्शकी प्रतिष्ठाका जो कार्य मीराबाई-चैतन्यमहाप्रभु जैसे रसिक जनोंद्वारा हुआ,

इन चारों कार्य-धाराओंके अद्‌भुत संगमका पावन दर्शन श्रीपोद्दारजीके विशाल व्यक्तित्वमें होता है।

* * * * *

ईश्वरीय संकेतों की आहुति

एक सज्जन थे श्रीशिवकुमारजी केडिया। आप श्रीवृन्दावन धाममें वास करते थे। श्रीकेडियाजी अच्छे साहित्यिक विद्वान् थे। बाबा और बाबूजीके प्रति उनके मनमें बहुत आदरका भाव था। सत्संगकी दृष्टिसे वे कई बार बाबा और बाबूजीके पास आया करते थे। एक बार वे वृन्दावनसे रतनगढ़ सत्संग-लाभके लिये आये। अवसर पाकर उन्होंने एकान्तमें बाबासे कहा – आप मुझे श्रीपोद्दारजीकी आध्यात्मिक स्थितिके बारेमें कुछ बतलाइये।

जैसी चर्चा श्रीकेडियाजीने लोगोंके मुखसे सुन रखी थी, उसीके कारण उन्होंने बाबासे ऐसा निवेदन किया था। लोगोंमें प्रायः ऐसी चर्चा होती ही रहती थी कि बाबूजीकी आध्यात्मिक स्थितिके बारेमें जितना बाबा जानते हैं, उतना अन्य कोई नहीं। लोगोंका ऐसा ही विश्वास था और इसी विश्वासके कारण इस प्रकारकी चर्चा होती रहती थी। साधारण लोगोंको भीतरी मर्मकी जानकारी तो थी नहीं और उस मर्मभरी गहरी बातको लोग भला जान भी कैसे सकते थे, पर वह चर्चा वस्तुतः सही थी। बाबूजीके बारेमें बाबाको अनेक बातें ज्ञात थीं। स्वयं भगवान श्रीकृष्ण समय-समयपर उनकी आध्यात्मिक स्थितिके बारेमें बतलाते रहते थे। जब-जब भगवान श्रीकृष्ण बतलाते थे, तब-तब बाबा उनको लिख लिया करते थे। वे केवल बातें ही नहीं लिखते थे, अपितु तिथि और समय भी लिख लिया करते थे। ऐसी बातोंकी संख्या लगभग सत्तर-अस्सी होगी। इन लिखित बातोंको बाबा हमेशा अपने गलेमें धारण किये रहते थे। केवल शौच-स्नानके समय उनको उतारकर अलग रखा करते थे। ये बातें बाबा किसीको बताया नहीं करते थे। यह तो उनके जीवनकी सुगुप्ततम एवं उत्तमतम निधि थी।

जब श्रीकेडियाजीने बाबूजीकी आध्यात्मिक स्थितिके बारेमें बाबासे प्रश्न किया तो बाबा बड़ी दुविधामें पड़ गये। उनके मनमें एक ओर तो इस निधिको अत्यधिक सुगुप्त रखे रहनेका भाव कार्य कर रहा था और दूसरी ओर यह भाव भी था कि कहीं किसी सच्चे जिज्ञासुकी भावनाका अनादर नहीं हो जाये। अतः बाबाने सोचा कि श्रीकेडियाजीकी परीक्षा लेनी चाहिये। उनकी चाहकी उत्कटताकी परीक्षा लेनेके लिये बाबाने कहा – यदि आप प्रतिदिन एक लाख नामजप एक मासतक लगातार करें तो मैं उसके बाद आपको कुछ बातें श्रीपोद्दार महाराजकी आध्यात्मिक स्थितिके बारेमें बतला

सकता हूँ।

श्रीकेडियाजीने बाबाकी यह शर्त स्वीकार कर ली। वे एक मासतक निष्ठापूर्वक 'हरे राम' महामन्त्रकी चौंसठ माला प्रतिदिन फेरते रहे। अभ्यास नहीं होनेसे मन बड़ा ऊबता था, पर किसी दिव्य वस्तुके लोभमें वे सारी कठिनाई पार करते चले गये। शर्तके अनुसार एक मासतक नामजप कर चुकनेके बाद श्रीकेडियाजी बाबाके समक्ष प्रस्तुत हुए। शर्तकी सम्पन्नता देखकर बाबा बड़े प्रसन्न हुए और फिर बाबाने बाबूजीके जीवनकी कई दिव्य आध्यात्मिक बातें लिख करके श्रीकेडियाजीको दीं। फुलस्केप साइज कागजके चालीस पृष्ठोंपर वे बातें लिखी हुई थीं।

श्रीकेडियाजीने अपना परम सौभाग्य माना। उन दिव्य बातोंको पढ़कर श्रीकेडियाजीको बड़ा आश्चर्य हो रहा था। उनके आश्चर्यकी सीमा नहीं थी। इस घोर कलियुगमें भी ऐसी उच्च आध्यात्मिक स्थिति किसी व्यक्तिकी हो सकती है, ये सब बातें उनकी कल्पनामें सिमट नहीं पा रही थीं। श्रीकेडियाजीके मनकी स्थिति ऐसी थी मानो विस्मयको भी विस्मय हो रहा हो। श्रीकेडियाजी ऐसी दुर्लभ वस्तु पाकर 'हृदय लगाइ जुड़ावहिं छाती'। वे उस दुर्लभ विवरणको बार-बार पढ़ते, बार-बार प्रसन्न होते और बार-बार आश्चर्य करते।

श्रीकेडियाजीने सोचा – इन चालीस पृष्ठोंपर जो बातें लिखी हैं, क्यों न उनपर श्रीपोद्दारजीकी मोहर लगवा ली जाये? श्रीपोद्दारजी इन पृष्ठोंको पढ़ लें और अनुमोदन कर दें। फिर तो कहना ही क्या है? इन सब बातोंको बाबाने बतलाया है, अतः श्रीपोद्दारजी अनुमोदन कर ही देंगे। ये बातें यथार्थ हैं, तभी तो बाबाने लिखा है। बाबा जैसे महान संन्यासी भला यर्थाथ रहित तथ्य क्यों लिखेंगे?

इन सब बातोंसे भावित हुए श्रीकेडियाजीने वे चालीस पृष्ठ बाबूजीको पढ़नेके लिये दे दिया तथा बता भी दिया कि इन पृष्ठोंकी प्राप्ति कैसे-कैसे हुई। बाबाने जो लिखा था, उन पृष्ठोंको पढ़कर बाबूजीने वह सब श्रीकेडियाजीको वापस कर दिया। बाबूजीकी हर-सम्भव चेष्टा रहती थी कि अपनी दिव्य भागवती स्थितिको, जहाँतक बन सके, अधिक-से-अधिक सुगुप्त रखा जाय। वापस करते हुए बाबूजीने कहा – बाबा तो संन्यासी हैं, भावुक हृदय हैं। व्यावहारिक जगतसे उनका कोई सम्बन्ध अथवा सम्पर्क नहीं। रात-दिन जगतसे परेकी बात सोचते रहते हैं। ये बातें सर्वथा सार-हीन हैं।

सच्ची बात तो यह है कि यह सब बाबाकी मात्र थोथी भावुकता है।

श्रीकेडियाजी तो पहले ही हृदयंगम नहीं कर पा रहे थे। उन कल्पनातीत बातोंको हृदयंगम कर सकना उनके लिये सम्भव था नहीं और अब, जब बाबूजीने अपनी टिप्पणी कर दी, तब तो श्रीकेडियाजीने यही मान लिया कि यह सब बाबाके भावुक हृदयकी कल्पना जगतमें एक मीठी उड़ान है, जो आदिसे अन्त तक थोथी है। श्रीकेडियाजीके अन्तरकी यही आस्था थी कि बाबूजी न कभी असत्यका आश्रय लेंगे और न कभी अन्यथा भाषण करके मुझे बहकायेंगे। इसके बाद श्रीकेडियाजीके मनमें बाबाके प्रति वैसी श्रद्धाका भाव नहीं रह गया। श्रद्धा-भावना पर्याप्त डगमगा चुकी थी।

इधर तो बाबूजीने श्रीकेडियाजीसे कहा कि यह सब बाबाकी मात्र थोथी भावुकता है, उधर उन्होंने थोड़ी देर बाद ही एकान्तमें बाबासे कहा – जो बातें आपने श्रीकेडियाजीको लिखकर दी हैं, उसके वे अधिकारी नहीं हैं।

बाबूजीका इतना कहना ही पर्याप्त था। बाबूजीके चले जानेके थोड़ी देर बाद श्रीकेडियाजीको बुलाकर बाबाने कहा – जो मैंने आपको लिखकर दिया है, उसमें कुछ संशोधन करना है। आप एक बार मुझे दे दीजिये।

श्रीकेडियाजीने वह लिखित सामग्री तुरंत सहर्ष दे दी। अब उस सारी सामग्रीके प्रति भी उनके मनमें वैसी आदर-भावना नहीं रह गयी थी। उस लिखित सामग्रीको अब पुनः श्रीकेडियाजीको दे देनेका प्रश्न ही नहीं था। श्रीकेडियाजीने भी वापस लेनेका प्रयास नहीं किया। श्रीकेडियाजी उस सामग्रीको बिना लिये ही रतनगढ़से वृन्दावन वापस आ गये। वृन्दावन आनेके कुछ दिन बाद भगवान श्रीकृष्णने स्वप्नमें दर्शन देकर श्रीकेडियाजीसे कहा – बाबाने जो लिखा था, वह एकदम सही था और श्रीपोद्दारजीने स्वयंको पूर्णतः छिपाये रखनेके लिये तुमसे वैसा कह दिया था।

ऐसा ज्ञात होते ही श्रीकेडियाजीको अपार दुःख हुआ कि मैं व्यर्थ ही उस वस्तुकी उत्कृष्टतापर संदेह कर बैठा और हाथमें आयी हुई उस श्रेष्ठ सामग्रीको मैंने खो दिया। 'कहि न जाइ कछु हृदय गलानी'। श्रीकेडियाजीने बादमें बड़ा प्रयास किया कि वे चालीस पृष्ठ मुझे पुनः मिल जायें, पर अब कैसे मिल पाते ? चिड़िया तो हाथसे उड़ चुकी थी।

जिस प्रकार बाबा अपने कण्ठहारके रूपमें उन सत्तर-अस्सी बातोंको सदा धारण किये रहते, उन्हीं बातोंके साथ इन चालीस पृष्ठोंको भी रख लिया। ये सब तथ्य बाबाके हृदयके हार बने हुए थे। शीत ऋतुकी बात है।

बाबा एकान्तमें बैठे हुए आग ताप रहे थे। अँगीठीमें कोयलेके अंगारे दहक रहे थे। उन एकान्त क्षणोंमें बाबूजी बाबाके पास आये। बाबाने उनका सम्मान किया तथा बैठनेके लिये आसन दिया। कुछ साधारण बातें करनेके बाद बाबूजीने कहा – मैं वह सब देखना चाहता हूँ, जो आपने भगवान श्रीकृष्णके संकेतपर मेरे बारेमें कुछ लिख रखा है।

बाबाने तुरंत अपने गलेसे निकालकर वह सब लिखित वस्तु बाबूजीको दे दी। बाबूजी वह सारी सामग्री आदिसे अन्ततक पढ़ गये। पढ़ चुकनेके बाद उन सारे पृष्ठोंको बाबूजीने मोड़कर समेटा और बाबाके सामने बाबाके देखते-देखते उसे अँगीठीकी आगमें डाल दिया। उस दिव्य सामग्रीको आगमें डाल करके बाबूजीने बाबासे कहा – आपपर भगवान श्रीकृष्णकी बड़ी कृपा है, जो आपको यह सब बतला देते हैं।

बाबा अपनी आँखोंसे देख रहे थे कि मेरी जीवन-निधिको आगकी लपटें आत्मसात् किये जा रही हैं। इसके बाद भी बाबा निश्चेष्ट-निस्स्पन्द बैठे रहे, इतना ही नहीं, वे मुस्कुराते रहे। न कोई शिकायत बाबूजीसे कि आपने यह सब क्या कर दिया और न किसी प्रकारका क्षोभ परिस्थितिके प्रति कि हाय, मेरी जीवन-निधि आगमें भस्मीभूत हो गयी।

बाबूजीने एक स्थानपर कहा है कि जो अपने सर्वस्वके भस्मावशेषपर सहर्ष नृत्य कर सकेगा, उसे ही उस प्रेम-राज्यमें प्रवेश मिल पाता है। इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं बाबा। अपनी भस्मीभूत जीवन-निधिकी राखको देखकर मुस्कुरानेवाले बाबाके अग्रिम जीवनमें श्रीप्रिया-प्रियतमकी जिन-जिन दिव्यातिदिव्य लीलाओंका उन्मेष हुआ, वे सब साधारण स्तरके जनके लिये अनुमानसे बाहरकी बातें हैं, सर्वथा बाहरकी बातें। इस बातपर लोगोंका विश्वास होगा नहीं, पर यह बात है पूर्णतः सत्य।

बाबूजीकी रुचिमें रुचि मिलानेवाले बाबाने फिर भविष्यमें ऐसे प्राप्त भगवदीय संकेतोंको अंकित करना बन्द कर दिया। बाबूजी नहीं चाहते तो क्यों लिखा जाये ? अतः कागजपर लिख लेनेका कार्य बन्द हो गया सदाके लिये, परंतु संकेत तो मिला ही करते थे और उन भगवदीय संकेतोंको अंकित करनेका लोभ भी कम प्रबल नहीं था। तो अब यह कहना चाहिये कि बाबाने उन संकेतोंको लिख लेनेकी प्रक्रिया ही बदल दी। आगेसे जब-जब जो-जो संकेत मिलते, उनको बाबाने

'परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही। चारु चित्त भीतीं लिखि लीन्ही।।'

श्रीमञ्जुश्यामा भावाप्लावन

एक बार नित्यनिकुञ्जेश्वरी-नित्यनिकुञ्जेश्वर श्रीराधाकृष्णके लीला-राज्यकी एक बार पूर्णतः ऐकान्तिक चर्चामें बाबाने बतलाया कि उन्हें कृष्ण-प्रिया श्रीवृषभानुनन्दिनीने किस प्रकार अंगीकार किया। बाबाने दो-अढ़ाई घंटेतक जिस रूपमें बतलाया, वह तो सर्वांशमें लिख सकना कभी भी सम्भव है ही नहीं। बाबाने तो बहुत विस्तारसे बतलाया, परंतु उसमेंसे जितना स्मरण रह सका, जितना समझमें आया और जितना ग्रहण कर पाया, वही यहाँ लिखनेका प्रयत्न कर रहा हूँ। इस नितान्त अंतरंग प्रसंगके लिखनेमें यदि कोई भी भूल अथवा विसंगति अथवा प्रमाद हो तो उसके लिये क्षमा-प्रार्थना है।

पूज्य श्रीबाबूजीके सम्पर्कमें आनेके बाद बाबाकी रस-साधना एवं उनका रसावगाहन उत्तरोत्तर गहनसे गहन होता चला गया। बाबा अधिकाधिक अन्तरंग परिधियोंमें प्रवेश करते चले गये। इसके बाद बाबाको एक विशिष्ट निकुञ्ज-लीलाका दर्शन हुआ, जिससे भाव-सिन्धुकी एक अति गम्भीर लहरी उच्छलित हो उठी और उस गम्भीर उच्छलनने बाबाके भाव-जीवनमें एक महान परिवर्तन ला दिया। वह विशिष्ट निकुञ्ज-लीला इस प्रकार है।

श्रीयमुनाजीके निर्मल प्रवाहके तटपर एक सुन्दर कुञ्ज है। इस निकुञ्जमें निवास करती है एकाकिनी श्यामविरहिणी एक व्रजाङ्गना। इस निकुञ्ज-निवासिनी व्रजाङ्गनाके अधरोंका हास्य और नयनोंका लास्य न जाने कहाँ छिप गया है। बहुत-बहुत देरतक वह उदास चित्तसे यमुना-तटपर बैठी रहती है। कभी नील धाराको, कभी नील गगनको और कभी नील तमालको देखकर वह व्याकुल हो उठती है। कभी-कभी तो यह रुदन करने लगती है। उसकी विरह दशाको देखकर यही लगता है कि उसका भोजन और शयन भी कठिनतासे हो पाता होगा। कभी तटपर और कभी कुञ्जमें अकेली बैठी हुई वह न जाने क्या-क्या सोचती और प्रार्थना करती रहती है।

एक दिन प्रातःकाल वह स्नान करके यमुनाजीसे लौटकर आयी थी और कुञ्जमें खड़ी-खड़ी अपने केशोंको सँवार रही थी कि तभी उसे

कदम्ब वृक्षके नीचे खड़े हुए श्रीश्यामसुन्दर दिखलायी पड़ गये। दिखलायी देते ही वह ठगी-सी रह गयी। केशोंको सँवारना स्थगित हो गया। वह मूर्तिवत् खड़ी-खड़ी एकटक श्रीश्यामसुन्दरको निहारने लगी। फिर तो वह ऐसी विभोर हो गयी कि उसे स्वयंकी भी सुधि नहीं रही। जब सुध-बुध आयी तो देखा कि श्रीश्यामसुन्दर वहाँ हैं नहीं। दर्शनका सुख तुरन्त अदर्शनकी पीड़ामें खो गया। उसकी व्यथाकी सीमा नहीं थी। सारे दिन और सारी रात उसके हृदयमें व्यथाका सागर उमड़ता रहा। एक क्षणके लिये भी श्रीश्यामसुन्दर उसकी स्मृतिसे हटे नहीं। वह सोच रही थी निरन्तर यही कि पुनः दर्शनका सौभाग्य मिलेगा या नहीं, किन्तु उस सौभाग्यका उदय हुआ।

प्रियतम श्यामसुन्दर दूसरे दिन पुनः प्रातःकाल उसी कदम्ब वृक्षके नीचे दिखलायी पड़े। उनको देखते ही व्रजाङ्गनाके हृदयमें उनके प्रति आत्म-निवेदनकी भावना जाग उठी, पर वह संकोचके मारे ठिठकी रह गयी। उधर कदम्ब वृक्षके नीचे प्रियतम श्यामसुन्दर खड़े हैं और इधर लज्जा और संकोचकी मूर्ति बनी वह व्रजाङ्गना खड़ी है। देखते-देखते ज्यों ही इसकी सुध-बुध गयी, त्यों ही प्रियतम श्यामसुन्दर चले गये। चेत आते ही व्रजाङ्गनाके तन-मन-नयनमें फिर वही विरह-व्यथा व्याप्त हो गयी। व्यथा अपार थी, परंतु आशा भी अवश्य थी कि कल प्रातःकाल वे पधारेंगे और वह आशा फलवती हुई। वे प्रातःकाल आये भी। अब श्रीश्यामसुन्दर प्रतिदिन प्रातःकाल आने लगे। दर्शन तो प्रतिदिन होता, परंतु परस्परमें बातचीत नहीं होती। प्रतिदिनका मिलन यदि एक ओर हृदयके निर्मल अनुरागको प्रतिपल संवर्धित कर रहा था तो दूसरी ओर अन्तरके संकोचको क्रमशः शिथिल भी करता जा रहा था।

मौन मिलनका क्रम कई दिनतक चलता रहा। एक दिन व्रजाङ्गनाके मनमें यह स्फुरणा उदित हुई – यदि मेरे पास सेवा-योग्य वस्तुएँ होतीं तो मैं उनकी सेवा करती, पर मेरे पास तो कुछ भी नहीं है। मैं किससे याचना करूँ?

उसे अचानक श्रीयमुनाजीका ध्यान हो आया और वह व्रजाङ्गना यमुनाजीकी ओर चल पड़ी। याचक बनकर कोई तटपर आये, उसे

श्रीयमुनाजी दर्शन न दें और उसकी मनोकामना पूर्ण न करें, यह भला कैसे हो सकता है? व्रजाङ्गनाने ज्यों ही याचना की, त्यों ही श्रीयमुनाजी अपने दिव्य परिवेषमें प्रकट हो गयीं और उसकी अभिलषित वस्तुएँ प्रदान करने लग गयीं। स्वर्ण थाल दिव्य आभूषण, दिव्य वस्त्र, दिव्य लेप, दिव्य गन्ध आदिसे भर गया। श्रीयमुनाजीने विविध प्रकारकी दिव्य भोजन सामग्री भी प्रदान की।

इन वस्तुओंको व्रजाङ्गना अपने कुञ्जमें ले आयी और प्रियतमकी प्रतीक्षा करने लगी। सेवाका चाव मनमें इतना अधिक भरा हुआ था कि प्रतीक्षाका एक-एक क्षण एक-एक युगके समान लग रहा था। इस प्रतीक्षाका भी अन्त आया और प्रातःकाल प्रियतम श्यामसुन्दरसे संकोच सहित उसने कहा – क्या मेरी कुछ सेवा स्वीकार कर लोगे?

प्रियतम श्यामसुन्दरसे स्वीकृति मिलनेपर उसने कहा – मेरे कुञ्जमें चलो।

प्रियतम मन्द गतिसे चलते हुए उसकी कुञ्जमें आये। व्रजाङ्गनाने प्रियतम श्यामसुन्दरका अपने हाथोंसे शृङ्गार किया। आज उसके आनन्दका सागर हिलोरें ले रहा था। उसके अन्तरका आह्लाद सीमाके बन्धनको छिन्न-भिन्न कर रहा था। उसने प्रियतम श्यामसुन्दरको सुन्दर पलंगपर बैठाकर सुमधुर भोजन कराया। भोजनके उपरान्त उसने प्रियतम श्यामसुन्दरको ताम्बूल अर्पित किया। प्रियतम श्यामसुन्दरने आधा पान आरोगकर शेष आधा पान उसके मुखमें दे दिया। वह तो इस परम सौभाग्यकी कल्पना भी नहीं कर सकती थी।

इसके उपरान्त प्रियतम श्यामसुन्दर चले गये। प्रियतमने अपने कर-कमलसे पान खिलाया, इसकी स्मृतिसे वह बार-बार सिहर उठती थी। इस प्रकार सेवाका क्रम कुछ दिनों तक चलता रहा। सेवोचित वस्तुएँ श्रीयमुनाजी प्रदान कर देतीं और वह व्रजाङ्गना उल्लसित हृदयसे अत्यधिक चाव पूर्वक प्रियतमकी सेवा-चर्या करती रहती।

एक दिन सेवा-चर्या करते समय उस व्रजाङ्गनाने प्रियतम श्यामसुन्दरसे पूछा – तुम यहाँसे नित्य ही कहाँ जाते हो?

प्रियतम श्यामसुन्दरने कहा – तुम जानना चाहती हो तो सुनो। मुझे श्रीराधाकी स्मृति सदा विभोर बनाये रखती है। उसी श्रीराधाके

पास जाया करता हूँ। श्रीराधाके रूप और गुणकी कोई सीमा नहीं।

प्रियतम श्यामसुन्दरके उत्तरसे व्रजाङ्गनाका समाधान तो हो गया, परंतु उनके चले जानेके बाद वह श्रीराधाके चिन्तनमें ही लीन हो गयी। वह श्रीराधा कैसी है, जिसकी स्मृति प्रियतम श्यामसुन्दरको सदा विभोर बनाये रखती है। ज्यों-ज्यों श्रीराधाका चिन्तन सघन होने लगा, त्यों-त्यों उसके प्रति व्रजाङ्गनाका आकर्षण गहन होने लग गया। प्रियतम श्यामसुन्दर तो व्रजाङ्गनाके पास नित्य ही आते थे और नित्य ही अचिन्त्य निर्मल प्यारसे पूरित होकर वह उनकी सेवा करती थी। एक दिन उस व्रजाङ्गनाके हृदयमें श्याम-प्रियतमा श्रीराधाकी भी सेवा करनेकी भावना स्फुरित हुई। जबसे नाम सुना और परिचय मिला, तबसे उस व्रजाङ्गनाका आकर्षण श्रीराधाके प्रति अत्यधिक बढ़ता चला जा रहा था। प्रबल आकर्षणसे अभिभावित उस व्रजाङ्गनाके द्वारा सेवा-चर्याके समय एक नवीन चेष्टा हो गयी। जब प्रियतम श्यामसुन्दर अपना चर्वित ताम्बूल उसके मुखमें देने लगे तो उसने आज अपना मुख खोलनेके स्थानपर अपनी हथेली फैला दी। प्रियतम श्यामसुन्दरने पूछा – आज यह नवीन बात कैसे?

उस व्रजाङ्गनाने सहमते हुए कहा – यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो यह चर्वित ताम्बूल श्रीराधाको दे आऊँ?

प्रियतम श्यामसुन्दरने अपनी प्रसन्नता पूर्ण अनुमति प्रदान कर दी। अनुमति प्रदान करनेके साथ-साथ उन्होंने व्रजाङ्गनाको श्रीराधाजीके निकुञ्जकी राह भी बता दी।

उस व्रजाङ्गनाने तुरन्त जाना उचित नहीं समझा। प्रियतम श्यामसुन्दर अभी वहीं गये हैं। मेरे तुरन्त जानेसे उनके विहार-विलासमें बाधा आयेगी। पर्याप्त समयके बाद वह व्रजाङ्गना प्रियतम द्वारा बतलाये गये पथपर चल पड़ी। उसने अपने आँचलमें वह चर्वित ताम्बूल भी बाँध लिया था श्रीराधाको उपहार स्वरूप देनेके लिये। उसे मार्गमें बड़े शुभ शकुन हुए। वनकी शोभा ही संकेत करने लगी कि अब श्रीराधाका निकुञ्ज नितान्त निकट है। यों तो सारा वन-प्रान्त ही रमणीय है, परंतु उस निकुञ्जके उपवनकी शोभा तो न्यारी ही है। ऐसा कौन-सा वृक्ष होगा, जो सुमधुर पक्व फलोंसे भरा न हो! वृक्षोंपर और लताओंपर

बैठे हुए शुक-पिकादि पक्षी कलरव नहीं कर रहे थे, अपितु वीणा जैसे सुमधुर स्वरमें गा रहे थे 'राधा-राधा-राधा-राधा'। कमल पुष्पोंसे भरित सरोवरकी शोभा सर्वथा अनुपम थी। दूर्वादलसे आच्छादित भूमिकी हरी-हरी आभा बड़ी ही प्यारी लग रही थी। नेत्रोंके लिये उपवनकी सुन्दर शोभा, नासिकाके लिये पुष्पोंकी मादक सुवास, कर्णपुटोंके लिये 'राधा' नामका ललित स्वर, पैरोंमें हरित भूमितलका कोमल स्पर्श – ये सभी अतीव न्यारे थे, पूर्णतः निराले थे। इस उपवनमें वह व्रजाङ्गना प्रवेश करती चली गयी। आगे उसे भव्य विशाल महल दिखलायी दिया। महलकी सुन्दरताको देखकर उसे विश्वास हो गया कि यही श्रीराधाका निकुञ्ज है। उसने अपने आँचलसे ताम्बूल निकाल कर अपने हाथमें ले लिया और वह महलके प्रवेश-द्वारकी ओर बढ़ने लगी। प्रीतिकी अधिकतासे उसकी चालमें गति-भंग परिलक्षित हो उठा था। स्खलित गतिसे चलती हुई वह महलके प्रवेश-द्वारपर आकर खड़ी हो गयी। तभी परिचारिकाने महलसे बाहर आकर उससे पूछा – क्या मैं तुम्हारे शुभागमनका हेतु जान सकती हूँ?

जिस प्रीतिकी अधिकताके कारण उसकी चालमें गति-भंग हो गया था, उसीके कारण अब कण्ठावरोध उपस्थित हो गया। उसकी भावमय स्थिति परिचारिकासे छिपी नहीं रह सकी। उसके हाथमें ताम्बूलको देखकर उसने अनुमान लगा लिया कि यह उपहार प्रदान करनेके लिये लायी है। परिचारिकाने पुनः अति स्नेह सनी वाणीमें पूछा – क्या तुम यह ताम्बूल-उपहार श्रीप्रियाजीके लिये लायी हो?

उस मूक-अधरा व्रजाङ्गनाके नयनोंने 'हाँ' कहा और उसके हाथ फैल गये, बढ़ गये वह चर्वित ताम्बूल देनेके लिये। उसके कर-पल्लवसे पान लेते ही वह परिचारिका भी प्यारमें डूब गयी और उसके नेत्र गीले हो उठे। ज्यों ही वह परिचारिका महलके अन्दर श्रीराधाकिशोरीको ताम्बूल अर्पित करनेके लिये गयी, वह व्रजाङ्गना तत्काल अपने कुञ्जके लिये लौट पड़ी। श्रीराधा और उसकी सखियाँ मुझ नगण्याके प्रति न जाने क्या सोचेंगी और न जाने क्या कहेंगी, इसी संकोचमें पड़कर अत्यधिक दैन्यसे अभिभूत हुई वह लौट पड़ी और इतनी तीव्र गतिसे लौटी कि अपने कुञ्जमें आकर ही उसने साँस ली।

दूसरे दिन प्रातःकाल प्रियतम श्यामसुन्दर उस व्रजाङ्गनाके कुञ्जमें जब आये तो उन्होंने पूछा – क्या तुमने मेरी प्राण-प्रियतमाको ताम्बूल भेंट किया था?

उस व्रजाङ्गनाकी दृष्टि लज्जाके मारे पृथ्वीसे चिपक-सी गयी। संक्षेपमें उसने प्रियतम श्यामसुन्दरसे सारा वृत्त बता दिया कि किस प्रकार महलकी एक सुन्दरीको ताम्बूल देकर वह लौट आयी थी। उस वृत्तको सुनकर प्रियतम श्यामसुन्दरने कहा – तब तो उसे बड़ी तीव्र व्यथा हुई होगी। जो भावपूर्ण हृदयसे रागानुरञ्जित प्रेमोपहार देता है, उस अनुरागिणीसे मिलनेके लिये वह कितनी अधिक आतुर हो उठती है, इसका अनुमान तुम कर ही नहीं सकती। तुम सोच भी नहीं सकती कि सच्चे स्नेही हृदयोंकी प्रतीक्षामें उसकी स्थिति क्या-से-क्या हो जाया करती है।

प्रियतम श्यामसुन्दरके श्रीमुखसे यह सुनकर वह व्रजाङ्गना अत्यधिक खिन्न हो गयी। उसके मनमें बड़ा खेद था कि मैं बिना मिले क्यों चली आयी। श्रीराधाके कष्टकी कल्पना करके वह स्वयंको कोसने लगी। प्रियतम श्यामसुन्दरकी सेवा-चर्याके उपरान्त ज्यों ही उस व्रजाङ्गनाको ताम्बूल-खण्ड मिला, वह तत्क्षण श्रीराधाकिशोरीसे मिलनेके लिये चल पड़ी। महलके प्रवेश द्वारपर उसे वही परिचारिका मिली। व्रजाङ्गनाको देखते ही उस परिचारिकाने मधुर उपालम्भ देना आरम्भ कर दिया – अरी सखी! कल तुम कहाँ चली गयी थी? मेरे वापस आनेतक तुमको यहाँ रहना चाहिये था। तुम एक क्षण भी यहाँ ठहरी नहीं। मेरी स्वामिनी श्रीराधा तुमसे मिलनेके लिये कितनी उत्सुक थी! पहले तो मैं यही सोच रही थी कि तुम इस उपवनकी शोभा देखनेके लिये गयी होगी, पर तू तो आयी ही नहीं। अब तू ही बता, बिना कुछ बतलाये ही चले जानेसे मेरी स्वामिनी श्रीराधाको कितना कष्ट हुआ? अब चल भीतर महलमें।

लज्जाके मारे उस व्रजाङ्गनाके पैर उठ ही नहीं रहे थे। उस सुन्दरी परिचारिकाने ही उसका हाथ पकड़ा और उसे श्रीराधाकिशोरीके समीप ले गयी। कक्षकी यवनिकाके उठते ही श्याम-प्रियतमा श्रीराधाको देखकर वह तो मन्त्र-सम्मोहित-सी खड़ी-की-खड़ी रह गयी। दोनों आँखें

खुली-की-खुली रह गयीं। पाषाणवत् खड़ी-खड़ी वह मन-ही-मन आश्चर्य करने लगी कि यह श्रीराधा है या मूर्तिमान सुन्दरता? ऐसी अनुमानातीत सुघरता! ऐसा निरुपमेय लावण्य!! ऐसी अपरिमेय कान्ति!!! नित्य किशोरी श्रीराधाको देखते ही वह व्रजाङ्गना तो उनपर न्यौछावर हो गयी। अनुपम-रूप-धामिनी श्रीराधाके अति सुकुमार पदारविन्दोंका अभिवन्दन करनेके लिये उसका तन-मन ललक उठा। उसे प्रियतम श्यामसुन्दरके भाव भरे उद्‌गार स्मरण हो आये – श्रीराधा तो अचिन्त्य सौन्दर्य, अकल्पनीय माधुर्य, अतुलनीय लालित्यकी साकार प्रतिमा है।

ज्यों ही श्रीराधाकिशोरीने उस व्रजाङ्गनाको देखा, त्यों ही तुरन्त आकर उसे छातीसे चिपका लिया। बहुत देरतक छातीसे चिपकाये रही तथा अपने स्नेहाश्रुओंसे उसे नहलाती रही। श्रीराधाकिशोरी उसे हृदयसे लगाकर इस प्रकार मिल रही थी, मानो युग-युगसे बिछुड़ी हुई अपनी सगी बहिनसे मिल रही हो। दोनोंके अद्‌भुत प्रेम-मिलनको देखकर निकुञ्जका सारा सखी-समुदाय परम विस्मय करने लगा। दोनोंको ही स्वयंकी सुधि नहीं रही। फिर सखियोंने ही दोनोंको चेत कराया।

कुछ प्रकृतिस्थ होनेपर श्रीराधाकिशोरीने उस व्रजाङ्गनाको अपने साथ पलंगपर बैठाया। पलंगपर साथ-साथ बैठनेमें उसे संकोच तो बहुत हो रहा था, परंतु स्नेह सने आग्रहको अस्वीकार कर सकना उसके लिये सम्भव नहीं हो पाया। पलंगपर बैठनेके बाद स्नेह भरिता श्रीराधा उससे विभोर वाणीमें कहने लगी – मैं कबसे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ। तू कहाँ अटक-भटक गयी थी? जबसे तू अलग हुई, तबसे तुम्हारी स्मृतिमें विराम आया ही नहीं। यही स्थिति प्राणाधार प्रियतमकी है। तुम्हारा नाम सुनते ही वे तो अधीर हो उठते थे। आजका दिवस कितना शुभ है, कितना सुन्दर है, जो तुम मुझे मिल गयी।

इतना कहकर श्रीराधाकिशोरीने पुनः उसे चिपका लिया। वह व्रजाङ्गना तो श्रीराधाकिशोरीके अतुलित रूपको, उसके अद्‌भुत स्वभावको, उसके अपार स्नेहको देखकर क्षण-प्रति-क्षण विस्मयमें अधिकाधिक डूबती चली जा रही थी। थोड़ी देर बाद प्रीतिनिमग्ना श्रीराधाकिशोरीने उस व्रजाङ्गनाका अपने हाथोंसे शृंगार करना चाहा।

व्रजाङ्गनाने विनम्र अनुरोध करते हुए कहा – आप ऐसा न करें। यदि आप कुछ करना ही चाहती हैं तो अपने श्रीचरणोंकी अमल और अविरल अनुरक्ति प्रदान करें। आप श्रीश्यामप्रिया हैं। आप ही मेरा शृंगार करेंगी तो वे प्रियतम श्यामसुन्दर मेरे बारेमें क्या सोचेंगे? वे मुझे क्या कहेंगे?

श्रीराधाकिशोरीने उससे कहा – अरी! तू इतना संकोच क्यों करती है? अपनेको पृथक् क्यों समझती है? हम दोनों ही श्रीकृष्णानुरागिणी हैं। वे श्रीकृष्ण ही हम दोनोंके प्राणवल्लभ हैं। वस्तुतः हम दोनों एक मन और एक प्राण हैं और वे श्रीकृष्ण ही हमारे जीवन-सर्वस्व हैं।

श्रीराधाकिशोरीके प्यारकी प्रबल धारामें वह व्रजाङ्गना बह चली। श्रीराधाकिशोरीने अपने हाथसे उसका शृंगार किया तथा स्वयं ही उसे भोजन कराया। इसके बाद जब वह व्रजाङ्गना अपने कुञ्जके लिये चली तो श्रीराधाकिशोरी उसे महलके द्वारतक पहुँचानेके लिये आयी। वह मार्गपर चल तो रही थी, परंतु आजके प्रेमासवका प्रभाव गहरा था। आज उस व्रजाङ्गनाके चरण पथपर ठीकसे पड़ ही नहीं रहे थे। डगमगाती चालसे चलती हुई अपने कुञ्जमें आकर वह अपनी शय्यापर अचेत-सी पड़ गयी। ऐसी अचेत कि उसे न दिवसके जानेका भान हुआ और न रात्रिके बीत जानेका ज्ञान। दूसरे दिन प्रियतम श्यामसुन्दरके आ जानेका भी परिज्ञान उसे नहीं हुआ। प्रियतम श्यामसुन्दरको खड़े-खड़े थोड़ा ही समय व्यतीत हुआ था कि किसी अचिन्त्य विधानसे उसकी आँखें खुलीं। उसने देखा कि सामने प्रियतम श्यामसुन्दर खड़े हैं। वह तुरंत उठकर बैठ गयी। बैठे-बैठे वह आत्म-ग्लानिमें डूबी जा रही थी। वह आत्म-भर्त्सना कर रही थी। प्रियतम श्यामसुन्दरके आ जानेके बाद भी वह सोयी रही। इस विचारसे उसके नयनोंमें खेद और ग्लानि भरी हुई थी। प्रियतम श्यामसुन्दरका उस ओर ध्यान गया ही नहीं। वे तो अपनी प्राणप्रिया श्रीराधाकिशोरीसे उसके मिलनका सारा विवरण सुननेके लिये उत्सुक हो रहे थे। वे कोमल शय्यापर उसके समीप बैठ गये और युगल नयनोंमें राग भरी जिज्ञासा लिये हुए उससे पूछने लगे – क्या कल तुम्हारी श्रीराधासे भेंट

हुई थी?

उस व्रजाङ्गनाने आदिसे अन्ततक जैसे-जैसे हुआ था, सारा बिना छिपाये बतला दिया। जब श्यामसुन्दरने यह सुना कि प्राणेश्वरी श्रीराधाने अपने हाथसे शृंगार किया तो उनके हृदयमें अत्यधिक प्यार उमड़ पड़ा और उन्होंने कहा – आज मैं तेरा शृंगार करूँगा।

इतना सुनते ही उस व्रजाङ्गनाको बहुत अधिक संकोच हुआ। मेरे सेव्य मेरा ही शृंगार करें, मेरे स्वामी ही मेरी सेवा-चर्या करें, इसे मन स्वीकार करनेके लिये प्रस्तुत ही नहीं था। वह स्वयंको स्वयंके आँचलमें छिपा लेना चाहती थी। उस व्रजाङ्गनाके अत्यधिक संकोचको देखकर और उसकी रुचिको आदर देनेके लिये प्रियतम श्यामसुन्दरने अपना आग्रह छोड़ दिया। इसके बाद प्रियतम श्यामसुन्दर प्राणेश्वरी श्रीराधाके निकुञ्जकी ओर चले गये।

श्रीराधाकिशोरी तथा प्रियतम श्यामसुन्दरसे व्रजाङ्गनाको जो अगाध प्यार मिला, इससे उसकी दशा कुछ निराली ही हो गयी थी। वह अपने आपेमें नहीं थी। यमुना-स्नान करके वह पुनः श्रीराधाकिशोरीसे मिलनेके लिये चल दी। कलकी तरह आज भी स्वागतका वही उत्साह, सत्कारका वही उल्लास, स्नेहकी वही वर्षा। श्रीराधाकिशोरीसे जब बात होने लगी तो उसने प्रियतम श्यामसुन्दरके आनेका सारा विवरण सुना दिया। ज्यों ही श्रीराधाकिशोरीने सुना कि संकोचके अतिरेकके कारण प्रियतम श्यामसुन्दर उसका शृंगार नहीं कर पाये और उनकी अभिलाषा अपूर्ण रह गयी, त्यों ही प्रिय-रुचि-मग्ना श्रीराधाकिशोरी उससे कहने लगी – अरी! अपना तन-मन-धन-जीवन सर्वस्व उनके लिये ही तो है। सब कुछ उनका ही है। वे जब चाहें, जो चाहें, जैसा चाहें, सदा-सर्वत्र वैसा ही करें। सदा उनकी अभिलाषा पूर्ण हो। उनकी रुचि ही अपना जीवन है। अपना सम्पूर्ण अस्तित्व उनके प्रसादनके लिये है। उनसे भला कैसा संकोच?

श्रीराधाकिशोरीके इन मार्मिक उद्‌गारोंको सुनकर व्रजाङ्गनाको अपने संकोचपर अत्यधिक पश्चात्ताप होने लगा। उसके नयनोंमें अश्रु-बिन्दु झलक आये। अब श्रीराधाकिशोरीने उसका नख-शिख शृंगार करना आरम्भ किया। इस नवीन सखी व्रजाङ्गनाको पल-पलपर संकोच

तो बहुत हो रहा था, पर श्रीराधाके अतुलनीय प्यारके सामने वह संकोच टिक न सका। नख-शिख शृंगार करते-करते जब श्रीराधाकिशोरी उसके वक्षःस्थलपर 'कृष्ण-कृष्ण' लिखनेको प्रस्तुत हुई तो उसने अनुरोध किया, बार-बार अनुरोध किया – आप 'राधा-राधा' लिख दें।

इतना सुनना था कि परम पुनीत प्रेमके प्रबलावेशके कारण श्रीराधाकिशोरी मूर्तिवत् स्थिर हो गयी। आवेशके किंचित् शमित होनेपर जब वे कुछ प्रकृतिस्थ हुईं तो बड़े मधुर स्वरमें उन्होंने कहा – अरी बहिन! तेरा अकलुष प्यार तो सर्वथा प्रियतम श्यामसुन्दर जैसा ही है।

इसके बाद श्रीराधाकिशोरीने अनेकानेक हार्दिक शुभाशंसनसे उस व्रजाङ्गनाका मंगलाभिषेक किया, जिसे सुनकर वह मन-ही-मन बार-बार स्वयंको धन्य-धन्य कह रही थी। वह बार-बार स्वयं ही स्वयंके सौभाग्यकी सराहना कर रही थी। मंगलाभिषेक करते-करते ही श्रीराधाकिशोरीने उसके वक्षःस्थलपर 'राधा' नाम लिख दिया।

जब वह व्रजाङ्गना अपने कुञ्जमें वापस लौट रही थी, तब उसके महान सौभाग्यको देखकर वनके जड़-चेतन स्थावर-जंगम सभी प्रफुल्लित हो रहे थे। मार्गके वृक्ष उसपर राशि-राशि पुष्प-वर्षा करने लगे तथा वृक्षोंपर बैठा हुआ खगकुल उसका बार-बार गुणगान करने लगा।

जिस समय उस व्रजाङ्गनाको प्रियतम श्यामसुन्दरके संस्पर्शकी प्राप्ति होती है, उसी क्षण उसकी परिणति श्रीमञ्जुश्यामा मञ्जरीके रूपमें हो जाती है और जिस समय उसके वक्षःस्थलपर श्रीराधाकिशोरी 'राधा-राधा' लिखती हैं, उसी क्षण उस परिणतिपर पक्की छाप लग जाती है। यह परिणति बाबाके गम्भीर 'भाव-जीवन' की परम रसमयी अन्तरंग गाथा है। प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवके रस-राज्यकी रसमयी लीलामें प्रवेश मिलनेके बाद बाबा सर्व प्रथम गौरवर्णीया श्रीमञ्जुलीला भावमें प्रतिष्ठित हुए थे, इसके बाद श्यामवर्णीया श्रीमञ्जुश्यामा भावमें प्रतिष्ठित हुए और यह बाबाकी द्वितीय भाव दीक्षा है। सन् १९४३-४४ में यह दीक्षा भी मिली निकुञ्जेश्वर श्रीकृष्णके द्वारा ही।

बाबाने अनेक बार श्रीमञ्जुश्यामा मञ्जरीके स्वरूपकी चर्चा करते हुए बतलाया है कि श्रीमञ्जुश्यामाजी श्रीराधाकिशोरीकी छोटी सहोदरा बहिन हैं। यह छोटी बहिन स्वभावसे कुछ चञ्चल और कुछ मुखर है

और श्रीराधाकिशोरी एवं श्रीश्यामसुन्दर दोनोंकी ही अत्यन्त प्रीतिपात्री है। दोनों ही श्रीमञ्जुश्यामाके माध्यमसे एक दूसरेको सुख प्रदान करनेका विधान रचते हैं। दोनोंको ही श्रीमञ्जुश्यामाजीमें अपनी-अपनी विवशताका एक सुन्दर समाधान दिखलायी देता है।

महाभावस्वरूपा वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाके हृदयमें अपार व्यथा है कि मैं अपने प्राणप्रियतम श्रीकृष्णको किंचित् भी सुख दे ही नहीं सकी। यद्यपि उनके जीवनका एक-एक श्वास, उनके हृदयका एक-एक स्पन्दन, उनकी वाणीका एक-एक शब्द, उनकी क्रियाका एक-एक व्यापार सर्वत्र और सर्वदा सर्वथा-सर्वथा हृदयाराध्य श्रीश्यामसुन्दरके लिये ही होता है, इसके उपरान्त भी वे अहर्निश अनवरत यही सोचती रहती हैं कि मुझ अकिंचनाके द्वारा प्रियतमका सुख-विधान कब हो पायेगा! श्रीवृषभानुनन्दिनी परम खिन्नताकी दारुण भावनासे नित्य-निरन्तर भावित रहती हैं कि मेरे द्वारा प्रियतमकी कोई सेवा कभी बन नहीं पायी। परम खिन्नताकी भावनासे सदैव अभिभूत रहनेके फलस्वरूप उनके आन्तरिक क्रन्दनमें कभी विराम आता ही नहीं। उनके अन्तरकी इस अपार व्यथा और अपार क्रन्दनके आधारपर बाबा कहा करते थे कि क्रन्दन ही श्रीराधाका जीवन है।

ठीक यही व्यथा रसराज नन्दनन्दन श्रीकृष्णके हृदयमें परिव्याप्त है। श्रीकृष्ण महामहैश्वर्यमय हैं, फिर भी प्रेम-परवश हुआ उनका व्यथित हृदय चीत्कार कर उठता है कि मैं अपनी प्राण-प्रियाको तनिक भी सुख नहीं दे पाया। हृदयकी व्यथाकी पराकाष्ठाका एक बिन्दु ऐसा भी आ जाता है, जब दोनों प्रेमी हृदयोंके हाहाकारका दारुण स्वरूप प्राणान्तक सीमाका स्पर्श करने लगता है और तब प्राणान्तक पीड़ासे अन्तरके व्यथित और मथित होते ही उन दोनोंके करुण हाहाकारके मिलन-बिन्दुपर अघटन-घटना-पटीयसी महाशक्तिमयी भगवती योगमायाके अचिन्त्य विधानसे एक नवीन परिस्थितिका निर्माण हो जाता है। वृषभानुनन्दिनीके दृष्टिपथपर अपनी सहोदरा बहिन मञ्जुश्यामा आती है। उसे देखते ही श्रीवृषभानुनन्दिनीके हृदयमें परम आशा उद्भासित हो उठती है कि मैं तो प्रियतमको सुख नहीं दे सकी, कदाचित् इसके माध्यमसे मैं प्रियतमको सुख-दान कर सकूँ। ठीक ऐसी ही प्रबल

आशाका उद्‌भव प्रियतम श्रीकृष्णके अन्तरमें होता है। श्रीमञ्जुश्यामाको देखते ही उनके मनमें भाव उमड़ने लगते हैं कि मैं तो अपनी प्रियाका सुख-सम्पादन नहीं कर पाया, किन्तु एक सम्भावना दिखलायी देती है कि कदाचित् इसके माध्यमसे मैं अपनी प्राण-प्रियाको सुखी बना सकूँ। ज्यों ही दोनोंके हृदयमें हाहाकारकी चरम सीमा उपस्थित होती है, उस सीमाके मिलन-बिन्दुपर श्रीमञ्जुश्यामा दोनोंके दृष्टिपथपर आती है और तत्क्षण दोनोंके प्रीति-विगलित हृदयमें बलवती आशाका संचार हो उठता है। श्रीमञ्जुश्यामाके माध्यमसे प्रिया श्रीराधा और प्रियतम श्रीकृष्ण एक-दूसरेको सुख-दान कर सकनेकी भावनासे परमाशान्वित हो उठते हैं और यह आशा फलवती भी होती है। फिर तो सुख-दानकी दिव्य लीलाका मधुर विलास आरम्भ हो जाता है और दोनों ओर सुख-दानके लिये होड़-सी मच जाती है। श्रीमञ्जुश्यामाजीके माध्यमसे दोनों एक-दूसरेको सुख-दान कर पाते हैं, ऐसा इसलिये कि श्यामवर्णा श्रीमञ्जुश्यामा श्रीराधाकृष्णका युगलित रूप है। नीलमकी नकबेसरके रूपमें श्रीमञ्जुश्यामाजी श्रीप्रियाजीके नासिकाग्र भागमें सदा विराजित रहती हैं। श्रीप्रियाजीके अंगमें श्रीमञ्जुश्यामाजीकी अवस्थिति ऐसे स्थलपर है, जहाँ वाम श्वासका एवं दक्षिण श्वासका, दोनोंका सुखद स्पर्श सदा-सर्वदा उन्हें प्राप्त होता रहता है, जो उनके युगलित स्वरूपका परिचायक है।

* * * * *

'स्वामी श्रीचक्रधरजी' से 'श्रीराधा बाबा'

स्वामी श्रीचक्रधरजीका नाम धीरे-धीरे श्रीराधा बाबा हो गया। जब उन्होंने संन्यास लिया था, तब उनके संन्यासी जीवनका नाम था श्रीमधुसूदनानन्द। ऐसा होकर भी लोग उन्हें स्वामी श्रीचक्रधरजी ही कहा करते थे। इसके बाद भावी जीवनमें भावोंका जैसा उन्मेष, उद्वेलन और आप्लावन हुआ, इसके फलस्वरूप इस नाममें भी परिवर्तन आ गया। परिवर्तनका वह ऐतिहासिक क्षण उपस्थित हुआ एक अद्‌भुताद्‌भुत दिव्य लीलाके दर्शनोपरान्त। रतनगढ़में रहते हुए जिन दिनों बाबा श्रीमञ्जुश्यामा भावसे भावित रहा करते थे, उसी समयकी बात है। यह प्रसंग सन् १९४४-४५ का होना चाहिये।

बाबा रतनगढ़वाली हवेलीमें अपने कमरेके अन्दर आसनपर बैठे हुए थे। प्रातःकालका समय था। तभी संसारकी विस्मृति हो गयी। जग-विस्मृतिके साथ ही शरीरकी भी विस्मृति-सी हो गयी। 'विस्मृति-सी' शब्दका प्रयोग इसलिये किया गया कि शरीरका भान कुछ-कुछ तो था ही। बाबाके नेत्रोंके सामनेसे वह हवेली तिरोहित हो गयी और वृन्दावनका दिव्य निकुञ्ज प्रासाद आविर्भूत हो गया। वह विशाल प्रासाद ऐसा है, जो अलौकिक सुन्दरता और अलौकिक सुगन्धसे भरपूर है। इसी दिव्य प्रासादमें एक सुन्दर स्थानपर वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाकिशोरी विराज रही हैं। इस समय श्रीराधाकिशोरी अकेली हैं। पासमें न तो प्रियतम श्रीकृष्ण हैं और न कोई सखी-मञ्जरी- सहचरी है। यदि समीपमें कोई है तो उनकी प्रिय सारिका और प्रिय शुक।

सारिका किशोरीकी बाँयी हथेलीपर बैठी है और वे अपनी दाहिनी हथेलीसे उसे सहला रही हैं। बहुत धीरे-धीरे, बहुत मीठे-मीठे सहला-सहला करके किशोरी अपने हृदयका प्यार सारिकापर उड़ेलती चली जा रही हैं। सहलाते-सहलाते किशोरीने सारिकासे कहा – सारिके! आजसे तुमको मेरा एक अभीष्ट कार्य विशेष रूपसे करना है।

ऐसा कहते-कहते किशोरीने, जिस तरह अपनी बाँयी हथेलीपर सारिकाको बैठा रखा था, उसी तरह अपनी दाहिनी हथेलीपर शुकको भी बैठा लिया और अपनी स्नेह सनी दृष्टिसे सारिका और शुक, दोनोंको नहलाते हुए किशोरीने कहना आरम्भ किया – तुम दोनोंसे ही मेरा निवेदन है और तुम दोनोंको ही मेरा अभीष्ट कार्य सम्पन्न करना है। तुम दोनों ही जानते हो कि मेरे प्राणवल्लभ प्रियतमका मधुर नाम मुझे अत्यन्त प्रिय है। मेरे प्रसादनके लिये तुम दोनों ही मुझे 'श्रीकृष्ण' नाम सुनाया करते हो। मुझे सुखी बनानेकी तुम दोनोंकी जो भावना है, मैं उसका अभिनन्दन करती हूँ, पर आजसे तुम दोनों अपना क्रम बदल दो। अब तुम मुझे 'कृष्ण' नामके स्थानपर 'राधा' नाम सुनाया करो। तुम दोनों कहोगे कि क्या राधा पगली हो गयी है। तुम दोनों ही नहीं, जो भी इसे देखेगा-सुनेगा, वही मुझे पगली और मूर्खा कहेगा। लोग मुझे पगली कहें तो उनको कहने दो। लोग मुझे मूर्खा कहेंगे, वह भी कह लेने दो। लोग मुझे अहंकारिणी कहेंगे, इसीलिये कि यह अत्यधिक आत्म-केन्द्रिता है

और इसे स्वयंको ही स्वयंका नाम सुननेमें बड़ी अभिरुचि है। मैं यह सारे आक्षेप सुन लूँगी और सह लूँगी, पर तुम दोनों आजसे मुझे 'राधा' नाम सुनाया करो। मेरी सखियाँ तुम दोनोंको मना कर सकती हैं, पर उन सखियोंका कहना भी मत मानना। हे प्रिय सारिके! हे प्रिय शुक! आज मैं अपने हृदयका अन्तरंगतम भाव भी तुम दोनोंसे छिपाऊँगी नहीं। मेरे प्राणाधार हृदयेश्वरको मेरा नाम प्रिय लगता है, अतः उनको प्रिय लगनेवाले नामका ही संकीर्तन किया करो। यह सही है कि मुझे 'श्रीकृष्ण' नाम अत्यधिक प्रिय है और यह नाम मेरे कर्णपुटोंमें अमृत उड़ेल देता है, पर क्या यह राधा अपने सुखके लिये प्रियतमके सुखकी उपेक्षा कर दे? मेरे लिये यह असह्य है। बस, मेरे प्राणवल्लभके सुखकी जय हो। अब मुझे 'राधा' नाम ही सुनाया करो।

इतना कहते-कहते श्रीराधाकिशोरी भाव-सागरमें निमग्न हो गयीं। इस लीलाके रसावगाहनमें कितना समय व्यतीत हो गया, इसका तनिक भी ज्ञान बाबाको नहीं रहा। इस लोकातीत दिव्य एवं कल्पनातीत मधुर लीलाने बाबाके व्यक्तित्वको सीमातीत रूपसे प्रभावित किया। उस महाभावके सागरकी लहरोंपर बाबाके जीवनका आग्रह – अन्य नामका आग्रह और जप-नियमका आग्रह – सभी आग्रह बह गये और रह गया अधरोंपर 'राधा' नाम। कभी मन-ही-मन, कभी मन्द स्वरमें और कभी उच्च स्वरमें 'राधा' नामका उच्चारण होने लगा। पहले बाबा महामन्त्रका और फिर राधाकृष्ण नामका जप और संकीर्तन किया करते थे, परंतु अब 'राधा' नामके मधुर स्मरण और संकीर्तनके परमानन्दमें 'महामन्त्र' और 'राधाकृष्ण' नाम स्वतः विलीन हो गया। अब रह गया था हृदयके भीतर और अधरोंके ऊपर 'राधा' नाम।

यह प्रसंग है प्रातःकालका और उसी दिन संध्याके समय बाबूजी बाबाके पास आकर कहने लगे – आज आपको एक अति विचित्र बात बतला रहा हूँ। क्या यह कभी उचित ठहराया जा सकता है कि निकुञ्जेश्वरी श्रीराधा अपने निकुञ्जके शुक-पिक-सारिकाको सतत 'राधा-राधा' रटनेके लिये कहे? लोग इसे आत्म-श्लाघा, आत्म-प्रतिष्ठा, आत्म-प्रशंसा ही कहेंगे। लोग कुछ भी कहें और कुछ भी समझें, पर श्रीराधा अपने निकटवर्ती विहंगम-वृन्दको 'राधा-राधा' रटनेके लिये ही कहती हैं और इस कथनकी प्रेरणा भी कितनी

सुन्दर है! इससे मेरे प्रियतमका सुख-विधान होगा। अपने प्रियतमके सुख-विधानके लिये श्रीराधा आत्म-श्लाघा जैसा कार्य करनेसे भी नहीं चूकती।

बाबूजीके मुखसे यह बात सुनकर बाबाको बड़ा ही विस्मय हो रहा था। यही दिव्य लीला तो आज प्रातःकाल बाबाने देखी थी। बाबाने बाबूजीसे कहा – अब मैंने भी 'राधा राधा' जपना आरम्भ कर दिया है।

यह सुनकर बाबूजीको बड़ी प्रसन्न्ता हुई। थोड़ी देर बाद बाबूजी बाबाके पाससे चले गये। तीन-चार दिन बाद बाबूजी पुनः बाबाके पास आये और कहने लगे – आप पहले षोडश-नामात्मक महामन्त्र जपा करते थे, इसके बाद 'राधाकृष्ण' 'राधाकृष्ण'का जपना आरम्भ किया। अब 'राधाकृष्ण'के स्थानपर 'राधा-राधा' जप करने लग गये हैं। आगे आप इसे मत छोड़ दीजियेगा।

बाबाने कहा – आप निश्चित मानिये कि अब 'राधा' नामको नहीं छोड़ूँगा, पर इसीके साथ आप यह भी निश्चित समझ लें कि यह 'राधा' नाम यदि किसी कारणसे अपने आप छूट गया तो उस छूटनेसे रसका ही निर्झरण होगा।

बाबाके इस उत्तरसे बाबूजीको प्रसन्नता ही हुई।

कमरेके एकान्तमें अपने सुरीले कण्ठसे बाबा जब 'राधा' नाम संकीर्तन किया करते थे, वह इतना मधुर एवं इतना ललित हुआ करता था कि लोग छिप-छिप करके उसे सुना करते थे। उस संकीर्तनको सुननेके लिये लोगोंके मनमें उत्कट चाह रहा करती थी। कभी-कभी लोगों द्वारा अनुरोध किये जानेपर भी बाबा स्वजन-समुदायमें अकेले ही 'राधा' नामका गायन किया करते थे। बाबाके अधरोंपर सदा ही राधा नाम रहा करता था। किसी कामके लिये सहमति अथवा असहमति प्रकट करनी हो अथवा किसीको बुलाना हो या सम्बोधित करना हो अथवा कभी विस्मय व्यक्त करना हो, तब-तब बाबा राधा ही कहा करते थे। बाबाके मन और मस्तिष्कपर राधा नाम पूर्णतः छा गया था। दिन हो या रात, जागरण हो या स्वप्न, बाबा राधा नाममय हो गये थे। उनका व्यक्तित्व ऐसा राधा नाममय हो गया था कि वे 'राधा बाबा' ही कहलाने लग गये।

भविष्यमें जब बाबा श्रीराधा-महाभावमें प्रतिष्ठित हुए, तब तो इस

संज्ञासे अभिहित होनेका पूर्ण औचित्य स्वतः सिद्ध हो गया। अब यह भी कहना पड़ता है कि श्रीराधा बाबा वे ही हैं, जो पहले स्वामी चक्रधरजी महाराजके नामसे जाने जाते थे। श्रीराधा बाबा कहलाये जानेकी यह पृष्ठ-कथा है बड़ी अद्‌भुत, बड़ी रोचक और बड़ी प्रेरक।

* * * * *

परकाय प्रवेश की साधना

परकाय-प्रवेश तथा स्थूल-सूक्ष्म-देहसे सम्बन्धित अनेक तथ्य बताते-बताते बाबाने अपनी साधनाका एक अनुभव सुनाया। बाबाके हाथ एक पुस्तक लगी, उसका नाम था 'Projection of Astral Body'। इस पुस्तकके लेखक शायद डा. मुल्डन हैं। बाबाने इस पुस्तकको देखा। इस पुस्तकमें स्थूल देहसे सूक्ष्म देहको पृथक् करनेके अनेक उपाय बताये गये हैं। उसमें एक उपाय यह था कि शवासनसे लेट जाय तथा स्थूल देहसे सूक्ष्म देहको पृथक् करनेका अभ्यास करे।

रतनगढ़में बाबा इस साधनाको करने लगे। तीन माह बाद उन्हें सफलता मिली। वे कमरेमें सोये थे। बाबाका स्थूल शरीर जमीनपर लेटा हुआ था, पर उनका सूक्ष्म-शरीर, स्थूल-शरीरसे बाहर निकलकर ऊपरकी ओर उठने लगा। बाबाकी दृष्टि स्थूल-शरीरपर भी थी और सूक्ष्म-शरीरपर भी। बाबाको इस सफलतापर प्रसन्नता भी हो रही थी। उनको ऐसा लग रहा था कि सूक्ष्म-शरीर छतमेंसे होते हुए छतको पार करके आकाशकी ओर ऊपर उठ जायेगा। तभी एक घटना हो गयी। श्रीदूलीचन्दजी दुजारीने एक बड़ा-सा बण्डल जोरसे पटका। वह बण्डल पुस्तकोंका था। उस बण्डलको पटकनेसे बड़े जोरसे धमाकेकी आवाज हुई। धमाकेकी जोरदार आवाजसे बाबापर बड़ा बुरा असर हुआ। उनको बड़ा झटका लगा। इस आकस्मिक आवाजसे उनका सूक्ष्म-शरीर तत्काल धड़ामसे नीचे गिर गया, अर्थात् छतके पाससे नीचे स्थूल-शरीरपर आ गिरा।*

* * * * *

*बाबाने बतलाया – इस झटकेका बड़ा भारी कुपरिणाम यह हुआ कि मैं हृद्-रोगसे ग्रस्त हो गया।

पिताजी की सद्‌गति

बाबाके पिताजीका निधन सं. २००० वि. चैत्र शुक्ल पञ्चमी तदनुसार ९ अप्रैल १९४३ को हुआ था। इन दिनों बाबा बाबूजीके साथ रतनगढ़में रह रहे थे। बाबाके पूर्वाश्रमके भाइयोंने पिताजीके निधनका समाचार तार द्वारा रतनगढ़ भेजा। यह तार बाबाको मिला तब, जब वे भिक्षा कर रहे थे। पत्तलमें परोसी गयी भिक्षा यदि बाबा छोड़ देते हैं तो भगवानको अर्पित किये गये नैवेद्यका अनादर होगा, अतः बाबाने और कुछ तो नहीं परोसवाया, पर पत्तलपर पहलेसे जो परोसा हुआ था, उसे बाबाने शीघ्रतासे ग्रहणकर लिया। भिक्षा समाप्त करके बाबाने यति धर्मके अनुसार तुरंत स्नान किया।

इसके कुछ समय बादकी बात है। प्रसंग रतनगढ़का है। जब एक दिन बाबा अपने निवास-कक्षमें प्रवेश कर रहे थे, तभी बाबाने देखा कि उनके पूर्वाश्रमके पूज्य पिताजी प्रवेश-द्वारपर खड़े हैं। वे अपने सूक्ष्म शरीरसे आ करके प्रवेश-द्वारपर खड़े हो गये थे। पिताजीको देखते ही बाबाने भूमिपर मस्तक टिकाकर प्रणाम किया और पूछा – आप यहाँ कैसे पधारे?

सूक्ष्म शरीरसे उपस्थित पिताजीने कहा – मैं इस समय बड़े कष्टमें हूँ। एक ही स्थानपर पड़ा रहता हूँ। कहीं भी आने-जानेकी स्वतंत्रता नहीं है।

पिताजीके उत्तरको सुनकर बाबाको बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि मेरे पिताजीका जीवन तो अत्यधिक आस्तिक और सात्त्विक था, फिर यह दुर्गति क्यों हुई? बाबाने विस्मय व्यक्त करते हुए अपने पिताजीसे पूछा – आपका जीवन तो निर्मलता और सदाचारका मूर्तिमान स्वरूप था। आप तो अत्यधिक संत-सेवी, पर-हितैषी, धर्म-निष्ठ और ईश्वरानुरागी थे, फिर ऐसी कठिन गति क्यों हुई? आपके जीवनकी श्रेष्ठता तो सदैव सराहनीय रही है और फिर आपकी सुगति न हो, यह तो बड़े ही आश्चर्यकी बात है।

बाबाका आश्चर्य और ऐसा प्रश्न उचित ही था। यह सुनकर सत्यको उद्‌घाटित करते हुए पिताजी कहने लगे – जब तुमने संन्यास

लेनेका निश्चय कर लिया तो तुम्हारे इस निश्चयको सुनकर परिवारके हम सभीको बड़ा दुःख हुआ। तुमको समझानेका तथा निश्चयसे विरत करनेका प्रयास किया गया, पर कुछ भी अभिलषित परिणाम नहीं निकला। जब तुमने संन्यास ले लिया तो मेरा हृदय बड़ा विकल हो उठा। हृदयस्थ क्षोभकी सीमा नहीं थी। क्षोभके अतिशय आवेगमें मैं तुम्हारे लिये यह कह बैठा कि 'जा, तेरा योग सिद्ध न हो।' एक प्रकारसे यह शाप ही था। उसीका यह कुपरिणाम है कि मैं इतना कष्ट पा रहा हूँ।

बाबाने पिताजीसे कहा – ईश्वराराधन करनेसे यह कष्ट दूर हो सकता है। आपकी और भी तो सन्तानें गाँवपर हैं। आप उनसे कहें कि इस कष्टके निवारणके लिये वे कोई अनुष्ठान करें।

पिताजीने बताया – वे सब कर नहीं पायेंगे। न तो उनकी सूक्ष्म पकड़ है और न उनकी ऊँची पहुँच है। यह कार्य तुमको ही करना है।

इतना कहकर पिताजी अन्तर्धान हो गये। बाबा मन-ही-मन विचार करने लगे कि क्या करना चाहिये। कई हेतुओंसे बाबा स्वयं अनुष्ठान कर नहीं सकते थे और पिताजीके कष्ट-निवारणके लिये अनुष्ठानका होना आवश्यक था। बाबाने एक सज्जनको बुलवा करके अपने पूर्वाश्रमके भाईके नाम पत्र लिखवाया। उन सज्जनने पूज्य श्रीतारादत्तजी मिश्रके पास पत्र लिखा कि पूज्य स्वामी श्रीचक्रधरजी महाराजके द्वारा दिया गया एक संदेश मैं आपके पास लिख रहा हूँ।

पत्रमें पिताजीसे वार्तालाप होनेवाली सारी घटनाका उल्लेख करके यह बतलाया गया था कि 'श्रीहरिः शरणम्' का सवा लाख जप अति विधि पूर्वक ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करते हुए करना चाहिये। यह पत्र उन सज्जनने डाक द्वारा भेज दिया। उन दिनों पं.श्रीतारादत्तजी मिश्र श्रीवैद्यनाथधाममें रहते हुए अध्यापन कार्य कर रहे थे।

पत्र मिलते ही उन्होंने विधि-विधान एवं नियम पूर्वक अनुष्ठान आरम्भ कर दिया और थोड़े दिनोंमें वह विधिवत् पूर्ण हो गया। इस अनुष्ठानके पूर्ण होनेपर पिताजी पुनः बाबाको दिखलायी दिये और उन्होंने कहा – मेरा कष्ट दूर हो गया है। मैं तो तुमको आशीर्वाद देनेके लिये आया हूँ।

इतना कहकर पिताजीने अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर तीन बार

शुभाशीर्वाद दिया। बाबाका मन और मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। बाबाने तुरंत अनुमान लगा लिया कि उधर भाई द्वारा वह अनुष्ठान सविधि सम्पन्न हुआ है और इधर कष्ट-विमुक्त पिताजीने पधारकर अपना शुभ दर्शन प्रदान किया है। अब शुभाशीर्वाद देकर पिताजी अन्तर्धान हो गये।*

* * *

इसके बहुत दिनों बाद बाबाको एक बार बड़ा शुभ दृश्य दिखलायी दिया। श्रीबदरीनाथजीके मन्दिरके उस पार पावन तीर्थ-स्थलीमें एक बड़ी सुन्दर हरी-भरी समतल भूमि है। उस समतल पावन स्थलीपर अनेक संत बैठे हुए हैं। कोई संत मुण्डित है और किसी-किसी संतके लम्बी-लम्बी श्वेत दाढ़ी है। एक संत व्यास-आसनपर विराजे हुए प्रवचन दे रहे हैं। बाबाको दिखलायी दिया कि श्रोताओंके रूपमें उपस्थित उस संत समुदायके बीचमें पिताजी भी बैठे हुए हैं। ऐसा देखकर बाबाका मन आह्लादित हो उठा।

* * * * *

मधुर वाद-विवाद

यह प्रसंग रतनगढ़का है। बाबूजी अपने कमरेमें बैठे हुए थे। पासमें विराजित थे बाबा। दोनों ही किसी लोकोत्तर रस-चर्चामें निमग्न थे, कभी रस-सुधा-सिन्धुकी मधुर लहरोंपर लहराना और कभी उस रस-सुधा-सिन्धुके अतल तलमें डूब जाना।

तभी कमरेमें बाहरसे आवाज आयी – बाबूजी!

बाबूजीने अनमनी, किंतु शान्त वाणीमें कहा – कौन है? आ जाओ, भीतर आ जाओ।

कमरेके भीतर आकर सेवकने कहा – बाहर एक दम्पति आपसे मिलनेके लिये प्रतीक्षा कर रहे हैं।

बाबूजीने कुछ सोचते हुए कहा – अच्छा, उन्हें बुला लो।

---

*एक बार बाबाने बतलाया – इस शरीरके जनक श्रीपिताजीकी अन्तिम परिणति भागुरि ऋषिके रूपमें हुई। महर्षि शाण्डिल्य तो श्रीनन्दकुलके पुरोहित हैं और महाभाग श्रीभागुरि ऋषि वृषभानुकुलके पुरोहित हैं।

वह सेवक तो कमरेके बाहर गया और बाबाने बाबूजीका हाथ अपने हाथमें लेकर कहा – अब मैं चलता हूँ। आप आगन्तुकसे मिलिये।

बाबूजीने कहा – आप जानेके लिये आतुर क्यों हो रहे हैं? उनसे बात करके उन्हें जल्दी ही विदा कर दूँगा। आप यही बैठे रहें।

बाबाने कहा – आपके सामीप्यके बाद अन्यत्र जानेके लिये आतुरताका अस्तित्व ही कहाँ है?

इस बातके समाप्त होते-होते दम्पतिने कमरेमें प्रवेश किया। म्लान मुख, गहन चिन्ता, जर्जर शरीर, सजल नेत्र, प्रत्येक चिह्न जैसे उनकी असहायावस्थाकी साक्षी दे रहा हो। बाबा तो संलग्न हो गये अपने नाम-जपमें और बाबूजी संलग्न हो गये दम्पतिसे बात करनेमें। प्रणाम तथा कुशल समाचारके बाद बाबूजीसे उन्होंने कहा – हमलोगोंकी इज्जत अब आपके हाथमें है। दस दिन बाद कन्याका विवाह है। मेरे पास कुछ भी नहीं है और न कुछ प्रबन्ध ही हो पाया है। बड़ी आशा लेकर आया हूँ। बस, किसी तरह लड़कीके हाथ पीले करवा दीजिये।

समाजके मध्यम वर्गके सफेदपोश लोगोंकी स्थिति बड़ी विकट है। वे लोग न तो कहीं मुख खोल सकते हैं और न कहीं हाथ फैला सकते हैं, भीतर-ही-भीतर घुटते हैं। वे यदि कहीं तनिक भी कुछ कहते हैं तो सामाजिक प्रतिष्ठाको धक्का लगता है और अभावावस्थामें काम बने तो कैसे बने? ऐसे सफेदपोश लोग बाबूजीके सामने भी खुल जाते थे, बह पड़ते थे। कुछ ही क्षणोंमें अभिलषित सीमासे कहीं अधिक राशि उस दम्पतिको मिल गयी। कृतज्ञताके भाव नेत्रोंकी सजलताके रूपमें छलक उठे। उस दम्पतिने चाहा कि कुछ शब्दोंके द्वारा अपने आभारको व्यक्त करें, पर बाबूजीने अपनी व्यस्तताका बहाना बताकर इसके लिये भी अवसर नहीं दिया। दम्पतिके विदा होनेपर कमरेके एकान्तमें पुनः बाबूजी और बाबा, दोनों लोकोत्तर रस-चर्चामें बह चले।

इसके एक मास बादकी बात है। बाबूजी अपने कमरेमें बैठे हुए थे। बाहरसे सेवकने निवेदन किया – कोई आपसे मिलना चाहता है।

क्या ही संयोगकी बात है कि इस बार भी बाबा बाबूजीके पास बैठे हुए थे, वैसी ही मधुर चर्चा और उस रस-चर्चाकी माधुरीमें दोनों परम निमग्न। बाबूजीको कुछ क्षण लगे अपने मनको इस लोकके धरातलपर उतार

लानेमें और फिर सेवककी बातको समझनेमें। बाबूजीने कहा – भेज दो।

अपनी पगड़ीको सहेजते हुए एक अधेड़ावस्थाके व्यक्तिने कमरेमें प्रवेश किया। औपचारिक बातचीतके बाद उस व्यक्तिने कहा – मुझे किन्हीं विश्वस्त लोगोंसे ऐसा ज्ञात हुआ है कि उस लड़कीके घरवालोंका हाथ एकदम ही खाली था और विवाहके लिये सारा खर्चा आपने दिया है। यह सम्बन्ध मेरे लड़केसे ही हुआ है। मुझे तो पता हीं नहीं था कि उनकी आर्थिक स्थिति इस प्रकारसे निम्न है। मुझे यदि तनिक भी जानकारी होती तो मैं यह सम्बन्ध कदापि स्वीकार नहीं करता। मेरा भाग्य फूटा हुआ था, जो मेरे इतने पढ़े-लिखे सुयोग्य लड़केको इस प्रकारसे अभाव-ग्रस्त घरका सम्बन्ध मिला।

बाबूजीके मुख-मण्डलकी सहज मुस्कान सर्वथा विलुप्त हो गयी। उनकी भृकुटि थोड़ी बंकिम हो गयी और उनके नेत्रोंमें लालिमा उतर आयी। 'रदपट फरकत नयन रिसौंहें' से होकर बाबूजी कँपकँपी वाणीमें फूट-से पड़े – कौन कहता है कि मैंने दिया है? इस प्रकारका मिथ्या प्रचार मुझे कदापि सह्य नहीं है। कहनेवालेको मेरे सामने लाइये। मैं ईश्वरकी साक्षीमें शपथपूर्वक कहता हूँ कि मैंने एक भी पैसा उसे नहीं दिया है।

बाबा मन-ही-मन बड़ा आश्चर्य करने लगे – मैं यह क्या सुन रहा हूँ? उस दिन मेरे सामने ही श्रीपोद्दार महाराजने उस दम्पतिको कन्याके विवाहके लिये धनराशि सहायता स्वरूप प्रदान की थी और आज वे ही सर्वथा उस सत्यको अस्वीकार कर रहे हैं। क्या श्रीपोद्दार महाराज ऐसा भी कर सकते हैं?

बाबा ऐसा सोचकर भी कुछ बोले नहीं, पर वे प्रौढ़ व्यक्ति कुछ घबरा-से गये। अभी जो देखा-सुना, वह सब उनकी आशाके सर्वथा विपरीत था। जब श्रीपोद्दारजी शपथपूर्वक कह रहे हैं, तब निश्चित-निश्चित ही लोगोंने झूठा प्रचार किया है। उनके मनकी सारी उथल-पुथल समाप्त हो चुकी थी। उन्होंने मस्तक झुका करके क्षमा-याचना की और संदेह-रहित मनसे बाबूजीके पाससे विदाई ली।

उनके जाते ही फिर पारस्परिक चर्चाका क्रम चल पड़ा। बाबाने बाबूजीसे कहा – मैं तो कल्पना भी नहीं कर सकता कि आप असत्य भाषण भी कर सकते हैं।

दुग्ध-धवल खादीके स्वच्छ वस्त्र पहने हुए बाबूजीने गम्भीर स्वरमें कहा – असत्य? कैसा असत्य भाषण? मैं तो कभी झूठ बोलता ही नहीं।

बाबाने तुरन्त कहा – आप यह क्या कह रहे हैं? क्या मुझसे भी झूठ? मेरे सामने आपने उस दम्पतिको कन्याके विवाहके लिये विपुल धनराशि दी थी। आप 'कल्याण' जैसी धार्मिक पत्रिकाके सम्पादक होकर इतना सफेद झूठ बोलेंगे तो इस कलिकालमें धर्मकी रक्षा कैसे हो पायेगी?

बाबूजीने विनम्र स्वरमें कहा – सचमुच, मैं कभी झूठ नहीं बोलता। मैं धनराशि देनेवाला कौन होता हूँ? वह धन मेरा था नहीं। वे रुपये तो किसी औरके थे। वे रुपये क्या मेरे द्वारा कमाये गये थे? जिसने कमाया था, उसका वह धन था। जिसका धन था, उसका वह धन कन्याके विवाहके लिये उनको दिया गया। उस देने और लेनेके बीच मैं तो मात्र माध्यम हूँ। हाँ, यदि मैं यह कहता कि मैंने दिया तो वह सचमुच झूठ होता।

इतना कहकर बाबूजीने आकाशकी ओर हाथ उठाकर एक दोहा सुना दिया –

देनहार कोउ और है, देत रहत दिन रैन।
लोग भरम मोपै करें, याते नीचे नैन।।

दोहेको सुनते ही बाबाके नेत्र छलक उठे। भरे-भरे स्वरमें बाबा कहने लगे – आपके इस असत्य भाषणपर कोटि-कोटि सत्य बलिहारी है। यह नितान्त सत्य है कि धर्मकी ध्वजा आप ही सँभाल सकते हैं। धर्मका प्रचार करनेवाली 'कल्याण' जैसी पत्रिकाका सम्पादकत्व आपको ही शोभा देता है। ऊपरसे देखनेमें असत्य, परंतु भीतरसे यथार्थतः महान सत्यका ही कथन आपके द्वारा हुआ है। इसीके साथ आपने उस कन्या-पक्षकी सामाजिक प्रतिष्ठापर रंच मात्र भी आँच नहीं आने दी। ऐसा बस, आप ही कर सकते हैं।

इसके बाद चल पड़ा पुनः रस-चर्चाका वही प्रवाह, जो था, पूर्वकी

अपेक्षा अधिक मधुर और अधिक महान। फिर वही निमज्जन और वही आह्लाद।

* * * * *

गीतावाटिका में प्रथम श्रीराधाष्टमी

बाबाने पहली राधाष्टमी सन् १९४१ ई.में दिल्लीमें चुपचाप मनायी। बाबूजीके साथ बाबा दिल्लीमें श्रीमथुरादासजीके घरपर ठहरे हुए थे। श्रीमथुरादासजीने ही जानकारी दी कि आज श्रीराधारानीका जन्म-दिवस है। सन् १९४१ ई. की राधाष्टमीकी पूजन-प्रक्रिया बाबाने दिल्लीमें व्रजरजसे अति संक्षिप्त रूपमें सम्पन्न की थी।

इसके बाद सन् १९४२, १९४३ और १९४४ में बाबाने श्रीराधाजीका जन्म दिवस रतनगढ़में मनाया। सन् १९४२ की भाद्र शुक्ल अष्टमीके दिन बाबा रतनगढ़में थे। बाबाने श्रीमोतीजीसे पूछा – क्या आपकी गाय दूध देती है?

श्रीमोतीलालजी पारीक बाबाके परम श्रद्धालु निजी परिकर थे। श्रीमोतीजीने कहा – आजकल डेढ़-दो पाव दूध देती है।

बाबाने पुनः पूछा – आप अपनी गायके दूधका दो पेड़ा, केवल दो पेड़ा बनाकर अभी थोड़ी देरमें ला सकते हैं क्या? आज राधाष्टमी है, अतः मुझे अर्चनाके समय नैवेद्य अर्पित करनेके लिये चाहिये।

श्रीमोतीजीने तुरंत स्वीकार कर लिया। सेवाके इस अवसरको उन्होंने अपना सौभाग्य समझा। वे अपने घर चले गये। थोड़ी देरमें दो पेड़ा बनाकर वे ले आये और बाबाके सामने रख दिया। क्या ही विचित्र संयोग है? श्रीमोतीजीने उन दोनों पेड़ोंपर स्वयं-प्रेरणासे (अथवा किसी अचिन्त्य प्रेरणासे) 'राधा' नाम अंकित कर रखा था। बाबाने तो ऐसा करनेके लिये कहा नहीं था, अतः यह देखकर बाबाको बड़ा विस्मय हो रहा था। बाबा विमुग्ध थे श्रीमोतीजीके मनकी सात्त्विकता एवं ग्रहणशीलतापर, जहाँ अव्यक्त इच्छा सहज ही प्रतिबिम्बित हो उठी थी।

इसके बाद श्रीराधा-प्राकट्यके निमित्तसे होनेवाली अर्चनामें बाबाने बाबूजीसे अनुरोध किया नैवेद्य अर्पित करनेके लिये। बाबूजी द्वारा नैवेद्य

निवेदन किये जानेपर बाबाने देखा कि पहले व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णने नैवेद्य स्वीकार किया और इसके बाद वृषभानुनन्दिनी श्रीराधारानीने। बाबाके उल्लासकी सीमा नहीं थी।

गीतावाटिकामें श्रीराधाजन्मोत्सव सर्वप्रथम सन् १९४५ ई.में मनाया गया, पर वस्तुतः यह था पाँचवाँ जन्मोत्सव।

(गीतावाटिकामें जो प्रथम श्रीराधा-जन्मोत्सव मनाया गया, उसका विवरण बाबाने स्वयं श्रीमहाराजजी (श्रद्धेय श्रीबालकृष्णदासजी)को सुनाया था।)

बाबाके शब्दोंमें वह विवरण है – मेरे मनमें विचार उठा कि इस बार श्रीराधा-किशोरीकी अर्चना 'काम-गायत्री' मन्त्रसे की जाये और अर्चना करें श्रीपोद्दार महाराज। अर्चनाके लिये मुझे श्रीराधाकिशोरीके एक सुन्दर चित्रकी आवश्यकता थी। मैंने श्रीपोद्दार महाराजसे निवेदन किया कि आप मेरे लिये तीन चित्र (१) माँ कीर्तिदा, (२) श्रीराधाकिशोरी और (३) सखी श्रीललिता – ये तीन चित्र बनवा दें।

श्रीपोद्दार महाराजने पूछा – इन चित्रोंको बनवाकर आप क्या करेंगे?

तब मैंने उत्तर दिया – ये तीनों चित्र उपासनाके लिये चाहिये और वह अर्चना भी आपसे करवानी है।

श्रीपोद्दार महाराजने इन चित्रोंको बना देनेके लिये चित्रकार श्री बी.के. मित्रा बाबूको कह दिया। चित्र-रचनाके पूर्व श्रीमित्रा बाबूसे एक संक्षिप्त अनुष्ठान भी करवाया गया था, जिससे अन्तरकी सात्त्विकता तूलिकाके माध्यमसे अवतरित होकर इन चित्रोंको कुछ-वास्तविकता कुछ-सजीवता प्रदान कर सके। श्रीमित्रा बाबूने ये तीनों चित्र बनाये। वस्तुतः यह आश्चर्य ही है कि मेरे लीला-राज्यकी आकृतियोंकी पर्याप्त अनुहार इन चित्रोंमें उतर आयी। इन्हीं चित्रोंकी सर्वप्रथम अर्चना सन् १९४५ ई.में श्रीराधाष्टमीके दिन हुई। ये चित्र आज भी पूजाघरमें हैं और उनकी नित्य पूजा होती है।

गीतावाटिकाका यह प्रथम राधाष्टमी-उत्सव अत्यधिक संक्षिप्त रूपमें

मनाया गया। मैंने श्रीपोद्दार महाराजसे कहा – आपको ही अर्चना करनी है और अर्चना 'काम-गायत्री' मन्त्रसे करनी है।

श्रीपोद्दार महाराजने कहा – यह सब विधि-विधान और काम-गायत्री मन्त्र आदि तो मैं कुछ जानता नहीं।

इन शब्दोंके माध्यमसे उनका दैन्य ही मुखरित हो रहा था। मैंने उनसे कहा – विधि-विधान और काम-गायत्री मन्त्र आदि तो मैं बता दूँगा, पर आप अपनी स्वीकृति प्रदान करें।

श्रीपोद्दार महाराजजीकी सदाशयता थी कि कभी उन्होंने मेरे अनुरोध या आग्रहको टाला नहीं। विरही संत श्रीरघुजी जिस कमरेमें रहा करते थे, उसीके सामनेवाले कमरेमें पूजाकी सारी तैयारी पहलेसे ही थी। पञ्चोपचार पद्धतिसे सूक्ष्म पूजा करवानी थी। कमरेमें मैंने और श्रीपोद्दार महाराजने प्रवेश किया। अन्दरसे मैंने कमरा बन्द कर लिया। अर्गला भी लगा दी, जिससे पूजाके बीचमें कोई आ न सके। कमरेमें अन्दर केवल दो ही व्यक्ति थे, मैं और वे। श्रीपोद्दार महाराज अर्चकके आसनपर विराजित हुए। पूजाके सारे उपकरण यथा-स्थान रखे हुए थे। सामने वे तीनों चित्र उच्च सिंहासनपर पधराये हुए थे। पूजाके आरम्भ होनेके तुरन्त पहले जो घटित हुआ, उसे तो मैं देखता-का-देखता ही रह गया। मैंने देखा कि श्रीपोद्दार महाराजके स्थानपर श्रीराधाकिशोरी प्रकट हो गयी हैं। उनका दर्शन पाकर अब भाव-विभोर-दशामें मैं क्या बोलूँ, क्या कहूँ?

श्रीपोद्दार महाराजने पूछा – क्या करना है?

मैं इस प्रकारकी स्थितिमें था ही नहीं कि कुछ बोल सकूँ। मैं कुछ भी निर्देश देनेकी स्थितिमें नहीं था, पर श्रीपोद्दार महाराजकी जल्दी बोलने-जैसी कुछ आदत थी, उसी स्वरमें उसी ढंगसे वे बोले – आप बताते क्यों नहीं कि क्या करना है? जल्दी बताइये।

श्रीपोद्दार महाराजके कहनेपर मैं प्रयास-पूर्वक इतना ही बोल पाया – जैसी आपकी इच्छा हो, वैसे कर लें।

मेरी ऐसी मनस्थिति थी ही नहीं कि कुछ संकेत कर सकूँ। किस उपचारसे पहले और किस उपचारसे बादमें अर्चन हो, यह बता सकना मेरे

लिये सम्भव ही नहीं था। श्रीपोद्दार महाराजके स्थानपर अभिव्यक्त श्रीराधाकिशोरीको देखकर मेरे लिये सारा कुछ विस्मृत हो चुका था।

श्रीपोद्दार महाराजने फिर पूछा – क्या जल अर्पित कर दूँ?

वे जैसा-जैसा कहते गये, मैं वैसे-ही-वैसे यन्त्रवत् अनुमोदन करता चला गया। उन्होंने ही श्रीराधाकिशोरीकी काम-गायत्री मन्त्रसे अर्चना की और अर्चनाकी विधि भी उन्होंने ही सम्पन्न की। मैं तो यही देख रहा था कि श्रीराधाकिशोरी स्वयं ही स्वयंकी अर्चना कर रही हैं। अर्चना सम्पन्न होते ही श्रीराधाकिशोरी अदृश्य हो गयीं और श्रीपोद्दार महाराजके स्थानपर श्रीपोद्दार महाराज ही दिखलायी देने लग गये।

(बाबाके श्रीमुखसे इस विवरणको सुनकर श्रीमहाराजजी बहुत विभोर थे।)

* * *

श्रीकामगायत्री मन्त्रसे सम्पन्न हुई अर्चनाका जो दिव्य चरणोदक था, उसको बाबाने अपने निकटजनोंके मध्य वितरित करवाया। उस चरणोदककी महिमाको उद्घाटित करनेवाला एक विचित्र प्रसंग घटित हो गया। वह दिव्य चरणोदक श्रीमोहनलालजी भुँनभुँनूवालाको भी दिया गया। श्रीमोहनलालजी पूज्य श्रीसेठजी (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) के समधी लगते थे। श्रीमोहनलालजी वह दिव्य चरणोदक शीशीमें अपने पास घरमें रखे हुए थे। वृन्दावनमें उनका कोई आत्मीय सम्बन्धी मरणासन्न स्थितिमें मृत्यु-शय्यापर पड़ा हुआ था। कई दिनोंसे उसे होश नहीं था। सेवा-शुश्रूषामें संलग्न व्यक्तियोंको ऐसा लगा कि ये अब कुछ ही क्षणके मेहमान हैं। श्रीमोहनलालजीको उस चरणोदककी स्मृति हो आयी। वे शीशी लाये तथा उस चरणोदककी कुछ बूँदें उस मरणासन्न व्यक्तिके मुखमें डाल दी। बूँदके पड़ते ही एक विचित्र चमत्कार हुआ। कहाँ तो वह व्यक्ति कई दिनसे बेहोश पड़ा था और कहाँ अब वही व्यक्ति अपना मुख खोलकर बार-बार कह रहा था – और लावो।

उस मरणासन्न व्यक्तिके द्वारा बार-बार 'और लावो', 'और लावो' कहे जानेपर श्रीमोहनलालजीने शीशीका सारा चरणोदक उनके मुखमें उड़ेल दिया। अब उस मरणासन्न व्यक्तिके मुखकी मुद्रा कुछ इस प्रकारकी

हो रही थी मानो वह किसी दिव्योन्मादकी स्थितिमें हो और उस समय उसके मुखसे जो कुछ उद्‌गार व्यक्त हुए, उससे उपस्थित अन्य लोगोंको ऐसा अनुमान होने लगा कि उसे कोई असाधारण अलौकिक अनुभूति हुई है। चरणोदकको पीनेके थोड़ी देर बाद ही उस मरणासन्न व्यक्तिका प्राणान्त हो गया।

श्रीमोहनलालजीने वह सारा विवरण लिखकर बाबाके पास भेजा। बाबाने बतलाया – जिस चकित और विभोर मनसे श्रीमोहनलालजीने वह सारा विवरण अपने पत्रमें लिखा था, वह सारा प्रसंग मेरे लिये आश्चर्यकी वस्तु नहीं था, अपितु जो हुआ, वह होना ही चाहिये था। वह चरणोदक कोई साधारण वस्तु तो था नहीं!

जिस भावभरे मनसे श्रीमोहनलालजीने बाबाको पत्र लिखा था, उसी भावभरे मनसे उन्होंने श्रीसेठजीको भी पत्र लिखा। श्रीसेठजीको इस प्रकारके चमत्कारमें न रुचि थी और न उन्हें पसन्द था, अपितु यही कहना उचित है कि उनकी स्पष्ट अरुचि थी। श्रीसेठजीको सदा यह भय रहता था कि फिर साधक साधनाके वास्तविक रूपसे फिसलकर चमत्कारके चक्करमें पड़ जाता है। श्रीसेठजीने श्रीमोहनलालजीका पत्र तथा उस पत्रके साथमें अपना एक अभिमत पत्र, ये दोनों पत्र बाबूजीके पास भेज करके टिप्पणी की – बाबा यह सब क्या चमत्कार करते हैं? इस प्रकारके चमत्कारका प्रदर्शन करनेमें बड़ी हानि होगी। हमलोग जिस प्रकारके संतोचित और सात्त्विक जीवनका प्रचार करना चाहते हैं तथा जन-जनमें जिस प्रकारकी भक्ति-पूर्ण आध्यात्मिक जीवनचर्याको प्रत्यक्ष देखना चाहते हैं, वह सब कैसे हो पायेगा?

यह पत्र पाकर बाबूजीने बाबाको बुलाया तथा कहा – बाबा, यह पत्र पढ़ें।

बाबाने वह पत्र पढ़ा। उस पत्रको वे क्या पढ़ते? उनके पास तो श्रीमोहनलालजीका पत्र पहले ही आ चुका था तथा उनको सारे प्रसंगकी जानकारी थी ही। हाँ, श्रीसेठजीके अभिमतको उन्होंने अवश्य पढ़ा और वह बात विचारणीय भी थी। बाबा भला क्या कहते बाबूजीसे? उनके मनमें इस

प्रकारके चमत्कार की कोई योजना थी नहीं। उस दिव्य चरणोदकके वस्तु-गुणसे कोई चमत्कार घटित हो जाय तो उसको रोक सकना किसीके बसकी बात है क्या? पत्र पढ़ चुकनेके बाद बाबा बाबूजीके मुखकी ओर देखने लगे। बाबूजीने कहा – श्रीमोहनलालजीको आप चरणोदक नहीं देते तो यह उलझन सामने नहीं आती। बातको पचाकर रख लेना सामान्य लोगोंके लिये कठिन होता है। अब अच्छी बात यही होगी कि आगेसे इस प्रकारकी पूजा ही न करी-करवायी जाय। अब उत्सव भी गीतावाटिकामें नहीं मनाया जाय।

बाबूजीके पाससे बाबा चले आये। इसका परिणाम यह हुआ कि सन् १९४६ में श्रीराधाजन्मोत्सव गीतावाटिकामें नहीं मनाया गया। उन दिनों 'कल्याण' पत्रिकाके सम्पादकीय विभागमें श्रीचन्द्रशेखरजी पाण्डेय कार्य किया करते थे। उनका निवास स्थान गीतावाटिकाके उत्तर लगभग दो मीलकी दूरीपर स्थित पालड़ी-बाजार नामक ग्राममें था। सन् १९४६ में बाबाने श्रीराधा-जन्मोत्सव उनके निवास स्थानपर मनाया, जिससे बाबूजीके कथनका निर्वाह हो सके। वहाँ जन्मोत्सव केवल सन् १९४६ में ही मनाया गया। फिर तो भविष्यमें प्रतिवर्ष गीतावाटिकामें ही मनाया जाने लगा।

* * * * *

'श्रीकृष्ण-लीला चिन्तन'

'कल्याण' मासिक पत्रिकाके सम्पादक होनेके नाते बाबूजीका यह प्रयास रहा करता था कि पत्रिकामें सुन्दर और श्रेष्ठ सामग्री प्रकाशित हो। बहुत पुराना प्रसंग है कि एक बार 'कल्याण' पत्रिकामें भक्त सूरदासजीके पदोंको बाबूजीने अर्थसहित प्रकाशित किया। कहा नहीं जा सकता कि यह बात कैसे घटित हो गयी, पर हो अवश्य गयी कि उन पदोंके साथ उन महोदयका नाम नहीं छप सका, जिन्होंने उन पदोंका हिन्दी भाषामें अर्थ लिखा था। कल्याणके उस अंककी एक प्रति उन अनुवादक महोदयके पास कल्याण-कार्यालयने नियमानुसार भेज दी। अनुवादके साथ अपने नामका अ-प्रकाशन उन्हें अच्छा नहीं लगा। वे अनुवादक महोदय गोरखपुरके ही थे। उन्होंने बाबूजीको उपालम्भ देनेके लिये छोटा-सा एक पत्र लिखा – कल्याणमें

श्रीसूरदासजीके पद अर्थसहित छापे गये, पर उसके साथ अनुवादका नाम आपने नहीं छापा। यह आपका अपनापन ही है, पर लेखक या अनुवादककी सदा चाह रहा करती है कि उसकी कृतिके साथ उसके नामको भी छापा जाये।

उन साहित्यकार महोदयने यह पत्र स्वयं अपने हाथसे बाबूजीको दिया। बाबूजी अपने कमरेमें बैठे हुए 'कल्याण'के फर्मोंके प्रूफ देख रहे थे। बाबूजीने उस पत्रको पढ़ा और पढ़कर उनको उत्तर देनेके बदले 'कल्याण'के प्रूफके पन्नोंको उलट-पलटकर कुछ खोजने लगे। 'कल्याण'का जो नया अंक छपनेवाला था, उसीके प्रूफ थे। इस अंकमें भी श्रीसूरदासजीके पद अर्थसहित प्रकाशित होनेवाले थे। इस अनुवादको उन साहित्यकार महोदयके सामने रखकर बाबूजी बोले – देखिये, यह पत्र तो आपने आज लिखा है और आगामी अंकमें छपनेवाले अनुवादके साथ आपका नाम पहले ही दिया जा चुका है। इससे पहलेवाले अंकमें अनुवादके साथ आपका नाम छपनेसे रह गया, इस भूलके लिये स्वयं मुझे खेद है।

नवीन अंकमें प्रकाश्य अनुवादके साथ अपना नाम देखकर वे साहित्यकार महोदय तो पानी-पानी हो गये। अब कुछ कहनेके लिये रह ही नहीं गया था। कुछ दिनके बाद यह बात बाबाके पास किसी सूत्रसे पहुँच गयी। बाबाका मन ग्लानिसे भर गया। वे मन-ही-मन कहने लगे – ये जगतके लोग भी कैसे हैं, जो अपने नामके प्रचारके पीछे मरे जाते हैं। मेरा गुण-गान हो, मेरे नामका नाम हो, यह आत्माराधन ऐसे-ऐसे नाच नचाता है कि लोग शील-संकोच सभी-कुछ भूल जाते हैं। उन साहित्यकार महोदयको श्रीपोद्दार महाराजके पास पत्र लिखते हुए लज्जा भी नहीं आयी।

* * *

इसके बाद बाबाने श्रीसूरदासजीके ३३ पदोंका हिन्दी भाषामें अर्थ लिख दिया और भेज दिया बाबूजीके पास। मर्मका उद्घाटन, भावोंका माधुर्य, अभिव्यक्तिका सौन्दर्य, भाषाका प्रवाह, शब्दोंका लालित्य आदि अनेक दृष्टिसे यह अनुवाद उन साहित्यकार महोदयके अनुवादकी अपेक्षा अत्यधिक उत्कृष्ट था। बाबाद्वारा किये गये अनुवादको प्राप्त करके बाबूजी बड़े प्रसन्न हुए। बाबूजीने उन साहित्यकार महोदयको विनम्र शब्दोंमें अनुवाद-कार्यसे विरत कर दिया। फिर बाबूजी बाबाके पास कुटियामें गये तथा कहने लगे – इनके आगे

जो और पद हैं, आप उनका भी हिन्दीमें अर्थ लिख दीजिये। आपके ये अनुवाद साधना-जगत और साहित्य-जगत, दोनोंके लिये परम उपयोगी सिद्ध होंगे।

बाबाने कहा – आपको कहनेकी आवश्यकता ही नहीं। आपकी इच्छा ही मेरे लिये आदेश-तुल्य है, पर मेरी एक प्रार्थना है। उसे आप स्वीकार कर लें तो मैं पदोंका अर्थ अवश्य लिख दूँगा।

बाबूजीने कहा – आप क्या कहना चाहते हैं?

बाबाने बताया – मैं अनुवाद तो कर दूँगा, पर यह सारा अनुवाद छपे हनुमानप्रसाद पोद्दारके नामसे।

बाबूजीने तुरन्त प्रतिवाद किया – यह भला कैसे सम्भव है? यह तो मैं समझ सकता हूँ कि आत्म-संगोपनकी प्रवृत्तिके कारण आप अपना नाम नहीं देना चाहेंगे, पर यह तो सर्वथा अनुचित है कि अनुवाद करें आप और अनुवादकके रूपमें छपे मेरा नाम हनुमानप्रसाद पोद्दार। हाँ, यह तो हो सकता है कि वह अनुवाद बिना-नाम दिये ही छप जाये।

बाबाने बड़े मीठे शब्दोंमें कहा – क्या मैं और आप दो हैं? मैंने जो लिखा, वह आपने ही तो लिखा। आप भेद-दृष्टिसे क्यों देख रहे हैं?

बाबूजीने समझानेका प्रयास किया – आप और मैं, हम दोनों एक ही हैं। यह सर्वथा सत्य होते हुए भी क्या यह यथार्थ नहीं है कि इस प्रकारके कार्यसे मेरे द्वारा दूसरेके यशका अपहरण होगा? इस यशापहरणके लिये मेरा मन कदापि तैयार नहीं है।

बाबा और बाबूजी, दोनों ही परम साधु, परम सुविज्ञ, परम चतुर, परम स्नेही, परम अमानी और इसके साथ ही परम मान-दाता। दोनोंमें यह प्रेम-कलह बहुत देरतक चलता रहा। दोनों एक दूसरेकी बात माननेको तैयार नहीं थे। बाबूजीको रंच-मात्र प्रिय नहीं था, अपितु पूर्णतः अप्रिय था कि बाबाद्वारा किये गये अनुवादपर नाम छपे हनुमानप्रसाद पोद्दार और बाबाको इतना भी अभीष्ट नहीं था कि बिना-नामके ही यह अनुवाद छपे। बाबाको यह भय था कि आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, कभी-न-कभी बाबूजी अवश्य यह रहस्य खोल देंगे कि बिना-नामसे छपनेवाले ये अनुवाद बाबाद्वारा लिखे गये हैं। इस प्रेम-कलहमें कोई भी झुकनेको प्रस्तुत नहीं था। अतः आगे अनुवाद-कार्य नहीं हो पाया।

बाबाने फिर बताया – मुझे पता नहीं कि उन ३३ पदोंका अनुवाद

श्रीपोद्दार महाराजने छापा अथवा नहीं। यदि छापा होगा तो बिना नामके ही छापा होगा, किंतु भविष्यमें मेरेद्वारा पदोंका हिन्दी भाषामें अर्थ नहीं किया गया। अनुवाद करनेकी बात वहीं समाप्त हो गयी।

बाबाके मनमें जो भय था, वह सही ही था। आगे चलकर बाबूजीके अनुरोधपर बाबाने 'कल्याण'के लिये लेख देने आरम्भ कर किये। ये लेख 'कल्याण'में छपते थे, परंतु उन लेखोंके साथ लेखकका नाम नहीं रहता था। इसके पहलेसे ही पाठकोंके बीच एक बात सर्वज्ञात थी कि जहाँ लेखकका नाम नहीं हो, वहाँ यह बात समझ लेनी चाहिये कि इस लेखके लेखक श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार हैं। वही बात उन प्रकाशित लेखोंके बारेमें होने लगी, जिनके लेखक वस्तुतः बाबा थे। लोगोंने बाबूजीसे कहना आरम्भ कर दिया कि आपके ये लेख बड़े ही सुन्दर और बड़े ही प्रेरणाप्रद हैं। कुछ दिनतक तो बाबूजीने रहस्य खोला नहीं, किंतु प्रशंसा जब अधिक होने लगी तो बाबूजीसे कहे बिना रहा नहीं गया और एक दिन कह ही दिया – सच्ची बात यह है कि इन लेखोंके लेखक तो बाबा हैं।

रहस्योद्घाटन होने भरकी देर थी, फिर तो लोगोंने बाबाकी प्रशंसा करनी आरम्भ कर दी। बस, उसी क्षणसे बाबाने लिखना बन्द कर लिया। फिर लेख लिखा ही नहीं। जो लेख 'कल्याण'में क्रमशः छपे थे, उनको बाबूजीने गीताप्रेससे सन् १९५२ ई.में पुस्तकके रूपमें प्रकाशित कर दिया। इस पुस्तकका नाम है 'सत्संग-सुधा'।

* * *

एक और घटना उल्लेखनीय है। बाबूजीने बाबासे पुनः अनुरोध किया – आप 'कल्याण'के लिये श्रीकृष्णलीला लिख दें। आप आशंकित न हों, आपका नाम प्रकाशित नहीं होगा।

बाबाने श्रीकृष्ण-लीला लिखनी आरम्भ कर दी। बाबा स्लेटपर पेंसिलसे लिखते थे और उनकी सेवामें रहनेवाले भगतजी कागजपर उतारकर 'कल्याण'के लिये बाबूजीको दिया करते थे। श्रीकृष्ण-लीलाके लेखनका कार्य बाबा प्रायः सूर्यास्तके बाद किया करते थे। कभी-कभी तो ऐसा भी हो जाता था कि शामके समय सात-आठ बजेके बैठे हुए रातके दो-तीन बजेतक लिखते रह जाते थे। श्रीकृष्ण-लीलाके लेखनकी बात जब एक बार बाबाने चलायी तो

कहा – कई बार ऐसा होता था कि मैं घंटों पाषाणवत् बैठा रहता और यह भगत मेरे पास निश्चेष्ट बैठा रहता। इस बातकी साक्षी तो यह भगत ही है। मैं स्लेटपर लिखूँ, तब न भगत कागजपर नकल करते हुए उतारे! मेरे द्वारा जो कुछ लिखा गया, वह स्व-दृष्ट लीला ही लिखी गयी। कई बार दृष्ट-लीलाके लिये उचित शब्द नहीं मिलते थे और कई बार लीलाका प्रवाह ऐसा गम्भीर और ऐसा भावमय रहता था कि लिख सकनेकी स्थिति नहीं रहती थी। इसके फलस्वरूप न जाने कितनी देरतक निष्पन्द बैठे रहना पड़ता था। जिस लीलाको मैंने देखा, उसको लिपिबद्ध करनेके लिये उचित मनस्थिति बने और उसको भाषाबद्ध करनेके लिये उपयुक्त शब्द मिलें, तभी तो वह लीला स्लेटपर लिखी जा सकेगी। जब लिखनेकी स्थिति बनती और लिखनेके लिये मन प्रस्तुत होता, उस समय भी जो-जो देखा गया, वह सब लिख नहीं सकता था। श्रीमद्भागवत पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, गर्गसंहिता जैसे कतिपय प्रामाणिक ग्रन्थ तथा गोपालचम्पू, आनन्दवृन्दावनचम्पू जैसे कुछ श्रेष्ठ लीला-ग्रन्थकी मर्यादाको ध्यानमें रखते हुए लिखना था, अन्यथा वास्तविकता तो यह है कि ऐसी-ऐसी लीलाएँ देखी हैं, जिनका वर्णन इन सारे ग्रन्थोंमें है ही नहीं।

बाबाके श्रीमुखसे यह विवरण सुनकर मन भरता ही नहीं था। यही चाव बना रहता था कि सदैव ऐसे प्रसंग सुननेको मिलते रहें।

श्रीहलधर-षष्ठीके दिनकी बात है कि उस दिन हमलोगोंकी एक बाल-सुलभ जिज्ञासाका समाधान करनेके लिये बाबा अपने 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' ग्रन्थमेंसे वह अंश निकालकर सुनाने लगे, जहाँ श्रीकृष्णका श्रीबलरामजीके साथ तथा अन्य गोपबालकोंके साथ मिलन-महोत्सवका वर्णन है। जन्म होनेके बादसे श्रीकृष्णको तथा श्रीबलरामजीको अलग-अलग रखा जाता था। अभीतक इन दोनोंने एक-दूसरेको देखा भी नहीं है। कंसके भयसे ही वसुदेव-पत्नी-रोहिणीजीके तनय श्रीबलरामजीको छिपाकर रखना आवश्यक था। कुछ समय बीत जानेके बाद यही उचित समझा गया कि ये गौर एवं श्याम शिशु साथ-साथ रहें-खेलें। यह निश्चय भी क्रियान्वित हुआ मिलन-महोत्सवके उपरान्त। इस मिलन-महोत्सवके दिन ही श्रीकृष्णका, श्रीबलरामका तथा अन्य गोपबालकोंका परस्परमें सम्मिलन होता है।

श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन ग्रन्थके इस अंशमें मैया यशोदा तथा

रोहिणीजीकी वत्सलताके वर्णनको पढ़ते-पढ़ते बाबाका स्वर गद्‌गद हो रहा था तथा आँखें तरल हो उठी थीं। मैया यशोदाको बलराम इतने प्रिय लगते हैं कि वे अपने पुत्र कन्हैयाको भूल जाती हैं और ठीक इसी प्रकार रोहिणीजीकी श्रीकृष्णमें इतनी आसक्ति है कि वे अपने पुत्र बलदाऊको भूल जाती हैं। इस अंशको पढ़कर बाबा कहने लगे – ऐसा केवल व्रज-भावके राज्यमें ही मिलता है कि दूसरेके पुत्रका लाड-चाव करनेमें माँ अपने पुत्रको भूल जाये। यह बात मैया यशोदामें है, मैया रोहिणीमें है और यही बात व्रजकी गोपसुन्दरियोंमें है। इन गोपसुन्दरियोंको भी अपने-अपने पुत्रकी सुधि नहीं। बस, उनके मनमें और उनकी आँखोंमें श्रीकृष्ण बसे हैं। इस भाव-राज्यकी यह गरिमा अन्यत्र दुर्लभ है। ब्रह्म-सम्मोहनके प्रसंगमें जब श्रीकृष्ण ही इन गोपसुन्दरियोंके पुत्र बन जाते हैं, तब उनकी स्व-तनयासक्ति अनोखा रूप धारण कर लेती है।

इतनी टिप्पणी करनेके बाद बाबा आगेका अंश पढ़कर सुनाने लगे। आगे ऐसा वर्णन आया है कि इस मिलन-महोत्सवपर व्रजसुन्दरियाँ मंगल-गीत गाने लगीं। इस पंक्तिको सुनाकर बाबा कहने लगे – अब यह कैसे विश्वास कराऊँ कि इस लीलाको लिखते समय मेरे समक्ष यह लीला ज्यों-की-त्यों हो रही थी। मेरे इन कानोंने मंगल-गीतोंकी ध्वनिको स्पष्ट रूपसे सुना है। गीतका गायन इतना ललित था, उनके कण्ठका स्वर इतना मधुर था कि वह सब वर्णनमें आ नहीं सकता। वह लालित्य, वह मधुरिमा मेरे अपने अनुभवकी वस्तु है।

इसी श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन ग्रन्थके बारेमें एक प्रसंग बाबा कई बार सुनाया करते थे। श्रीकृष्णके जन्म होनेपर उल्लासोन्मत्त गोपोंने इतना दूध-दही-घृत-नवनीत ढरकाया कि नदी बह चली। दधि-कीचसे भरा हुआ व्रज, सागर जैसा लग रहा है और उसके बीच सर्वत्र घूमते हुए नन्दरायजी मन्दर पर्वत जैसे लग रहे हैं। उनकी कमरमें लपेटा हुआ वस्त्र घृत-दधिसे चिकना होकर तथा फूलकर ठीक वासुकि नाग जैसा लग रहा है। उस कटिबन्ध वस्त्रको पकड़-पकड़ करके उनके प्रियजन उन्हें इधर-उधर खींच ले जा रहे हैं और वे अतिशय प्रसन्न हो रहे हैं। इस दृश्यका वर्णन गोपालचम्पू ग्रन्थमें भी है और बाबाने वह श्लोक उद्‌धृत कर दिया। उस श्लोककी एक पंक्ति हैः –

'मध्य-धटी-फणिराजे कृष्टं, ह्रद्यसुहृद्‌भिरतीव च हृष्टम्'

अपनी दृष्ट लीलाके आधारपर बाबाने 'धटी' शब्दका अर्थ कटिबन्धवस्त्र कर तो दिया और यह अर्थ सही भी था, परंतु इस सही अर्थके

अल्पना-स्थली का पूजन

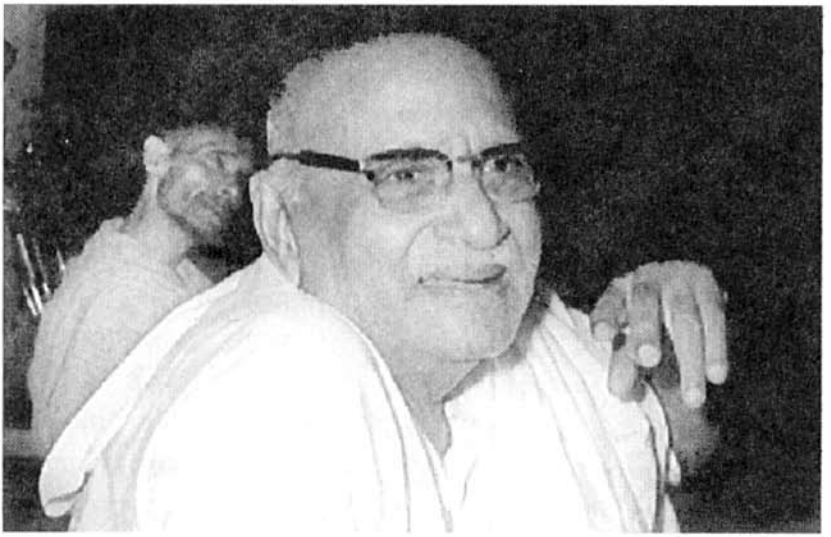

उत्सव के मध्य उल्लास

श्रीराधाष्टमी के मंच पर : बाबा एवं मैया

पक्षमें कोई प्रमाण बाबाकी स्मृतिमें उभरकर सामने नहीं आ रहा था। प्रमाणके अभावमें बाबाके मनको संतोष नहीं हो रहा था। अपनी स्मृतिको पर्याप्त टटोल लेनेपर भी जब बात नहीं बनी तो बाबाने अपनी 'दृष्टि' अपने जीवनाराध्य श्रीनन्दनन्दनकी ओर 'फेरी' और उन्होंने 'बता' भी दिया कि अमुक कोषमें ऐसा ही अर्थ दिया हुआ है। बाबाने वह संस्कृत शब्दकोष मँगवाकर देखा और उस शब्दकोषमें वह अर्थ मिल गया।

इस जन्म-महोत्सवके सारे वर्णनको स्लेटपरसे कागजपर उतारकर भगतजीने बाबूजीको दे दिया और यह वर्णन कम्पोज होनेके लिये गीताप्रेस भेज दिया गया। कम्पोज हो जानेके बाद उस वर्णनका प्रूफ देखनेके लिये सम्पादकीय विभागके एक विद्वानको दिया गया। वे 'धटी' शब्दका अर्थ नहीं लगा पाये और उन विद्वान महोदयने अपनी समझके अनुसार उस सारे वर्णनमें कई जगह संशोधन-परिवर्तन कर दिया। यह संशोधन-परिवर्तन गोस्वामीजी (पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी) को अभीष्ट नहीं था, पर इस संशोधन-परिवर्तनको अस्वीकृति प्रदान करनेसे उन विद्वान महोदयके मनमें अपमान-बोध हो जानेकी आशंका थी। गोस्वामीजी वह सारा संशोधित-परिवर्तित वर्णन लेकर बाबाके पास गये। बाबाको वस्तुस्थिति समझनेमें देर नहीं लगी। बाबाने कहा – गोस्वामीपाद! 'धटी' शब्दका अर्थ नहीं जाननेके कारण ही यह सारा संशोधन-परिवर्तन हुआ है। आप उस शब्दकोषमें 'धटी' शब्दका अर्थ देखकर सब ठीक कर दीजिये।

गोस्वामीजीने शब्दकोष देख लेनेके बाद वह सारा संशोधन-परिवर्तन हटा दिया और सम्पूर्ण वर्णनकी शब्दावली ज्यों-की-त्यों पूर्ववत् कर दी।

बाबाद्वारा लिखित 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' धारावाहिक रूपसे 'कल्याण'में प्रकाशित होने लगा। इस वर्णनके आरम्भ अथवा अन्तमें लेखकका नाम तो रहता नहीं था, अतः 'कल्याण'के पाठक यही समझने लगे कि इसके लेखक हनुमानप्रसादजी पोद्दार हैं। लोग बाबूजीकी सराहना, कभी समक्ष मौखिक रूपमें और कभी परोक्ष लिखित रूपमें पत्रके द्वारा करने लगे। स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) की बात है। वटवृक्षके सत्संगके उठते ही 'कल्याण'के एक पाठकने बाबूजीकी प्रशंसा करते हुए कहा – आपका अत्यन्त सुन्दर और मर्मस्पर्शी लेख देखकर अत्यधिक आनन्द होता है। 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' जैसा भक्तिपूर्ण और विद्वत्तापूर्ण परम सुन्दर लेख 'कल्याण'में धारावाहिक रूपसे छापकर आप

'कल्याण'के पाठकोंका बड़ा हित कर रहे हैं।

अपनी झूठी प्रशंसा सुनते-सुनते परमपूतात्मा बाबूजीके निर्मल हृदयकी कोमल भावनाएँ अत्यधिक आहत होती चली जा रही थीं। उनका धैर्य अब अपनी अन्तिम सीमाका स्पर्श कर रहा था। बाबाको आश्वासन दे रखा था, अतः सत्योद्घाटन कर नहीं पाते थे, पर अब यह सराहना सर्वथा असह्य हो गयी और बाबूजीके मुखसे निकल ही गया – यह सब झूठी सराहना हो रही है। इस धारावाहिक लेखका लेखक मैं नहीं हूँ। यह सरस और विद्वत्तापूर्ण लेख श्रीस्वामी चक्रधरजी महाराजने अपना नाम प्रकट न होने देनेकी शर्तपर लिखना प्रारम्भ किया था।

अधरोंकी सीमासे बाहर निकलने भरकी देर थी, फिर तो यह सत्य बात फैलने लगी। ऐसी बात भला छिपायेसे भी छिपती है? वास्तविकता तो यह है कि ऐसी बात चावपूर्वक परस्परमें कही जाती है, सुनायी जाती है और बतायी जाती है। धीरे-धीरे यह बात बाबातक पहुँची और तभी 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन'के लेखनका कार्य विसर्जित हो गया। तबतक जितना लिखा गया था, बस, वही उसकी सीमा हो गयी। बाबाद्वारा सम्पूर्ण श्रीकृष्ण-चरित्रका लेखन नहीं हो पाया। सन् १९४६ ई. से लगभग दस वर्षोंतक अनवरत धारावाहिक रूपसे 'कल्याण'के पृष्ठोंपर जितना छप पाया, वह गीताप्रेससे पुस्तकाकार 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन'के नामसे प्रकाशित हो गया।

सन् १९४८ ई.में 'कल्याण'का 'नारी' विशेषांक प्रकाशित हुआ था। बाबूजीके अनुरोधपर विशेषांकमें प्रकाशनार्थ बाबाने चार सुन्दर वृत्त लिखे, १ –जगज्जननी श्रीराधा, २ – माता यशोदा, ३ – माता रोहिणी और ४ – अष्टसखी। ये चारों वृत्त अति भावपूर्ण हैं। इनका प्रकाशन सर्वप्रथम 'नारी' अंकमें हुआ। इसके बाद इनका प्रकाशन 'ब्रजलीलाके प्रमुख नारी पात्र' में पुस्तकाकार हुआ। 'जगज्जननी श्रीराधा' का स्वतन्त्र लघु पुस्तिकाके रूपमें प्रकाशन कई बार हो चुका है। 'जगज्जननी श्रीराधा' पुस्तिका पूज्या श्रीआनंदमयी माँको बड़ी प्रिय थी।

* * * * *

श्रीमोहनलालजीको पत्र

[१]

गोरखपुर
श्रावण द्वितीय पूर्णिमा, २००४ वि.
३१-८-१९४७

श्रीयुत मोहनलालजी,

श्रीस्वामीजीने लिखवाया है—

आपका पत्र मिला। आपने वृन्दावनमें स्त्रियोंको दीक्षा आदि दी जानेकी बातें लिखकर इस सम्बन्धमें मेरी राय पूछी है। संक्षेपमें उन बातोंका उत्तर यह है—

(१) मेरी मान्यता यह है कि स्त्रियोंको दीक्षा देना अत्यन्त हानिकर है। इसमें हानि-ही-हानि भरी हुई है। किसी भी त्यागी साधुको, संन्यासीको अथवा त्यागी वैष्णवको स्त्रीसे सर्वथा अलग रहना चाहिये, अन्यथा अधिकांशमें पतन होना अनिवार्य है। जो सच्चे साधु वैष्णव संत आदि हैं, वे तो इस चेला-चेली बनानेकी झंझटसे अलग रहकर भजन ही करते हैं।

(२) मन्दिरोंमें बिना मन्त्रकी पूजा होनेके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं कह सकता। श्रीकृष्ण ही जानें कि वे कौन-सी पूजा ग्रहण करते हैं और कौन-सी नहीं।

(३) पर मुझे अत्यन्त विचार हो रहा है कि वृन्दावनमें रहकर इन गन्दी बातोंको देखनेके लिये आप समय क्यों निकालते हैं? मेरी तो प्रेमभरी राय है कि जहाँ कहीं भी जिस स्थानमें जिस मन्दिरमें बुरी बातोंको देखने-सुननेका मौका मिले, वहाँ जाना आप स्थगित कर दें। सर्वत्र आपको यदि यही मिलता हो तो आप जिस मकानमें हैं, उसीको प्रिया-प्रियतमका मन्दिर मानकर उसके कण- कणमें उनकी भावना कीजिये। वे हैं ही। आपको इसलिये नहीं दीखते कि आप उन्हें देखना नहीं चाहते तथा कहीं आपका मकान भी ऐसे ही वातावरणसे भरा हो तो मैं तो यही कहूँगा कि आप वृन्दावन छोड़कर कहीं दूसरी जगह

चले जाइये।

(४) दूसरेकी ओर न देखकर आप अपनेको सुधारिये। श्रीप्रह्लादरायजी निम्बार्क सम्प्रदायकी दीक्षा लेकर रामायण, गीता-पाठ, संध्या आदि सभी छोड़ दिये हैं तो उनको छोड़ने दीजिये। आपको नहीं छोड़ना चाहिये। सनातन आचारका पालन करते हुए ही आप प्रिया-प्रियतमका अखण्ड स्मरण कीजिये। वे बनते हैं या बिगड़ते हैं, इसका ठेका आपको श्रीकृष्णने दिया हो तब फिर तो उनकी सँभाल करनी ही चाहिये, पर यदि ठेका नहीं दिया है तो यह दोहा याद कीजिये –

तेरे भावै जो करो, भलो बुरो संसार।
नारायण तू बैठ कै, अपनो भवन बुहार।।

(५) महावाणीके पाठ करनेका वास्तविक अधिकारी वही है, जिसके मनमें स्त्री भावना सर्वथा समाप्त हो गयी हो और जो कामविकारसे सर्वथा मुक्त हो गया है। महावाणी एक परम दिव्य ग्रन्थ है। बिना अधिकारी बने जो पारायण करता है, उसके जीवनमें पतनकी ही आशंका विशेष है। प्रिया-प्रियतम उनकी रक्षा करें।

अन्तमें आपसे प्रार्थना है कि अनमोल जीवनको इस प्रकार पापमयी बातोंको देखनेमें, सुननेमें मत खोइये। इन सबकी ओरसे दृष्टि मोड़कर प्रिया-प्रियतमके चिन्तनमें मन लगाइये। यही सार है। आपका मेरे प्रति बड़ा स्नेह एवं विश्वास है, इसलिये निःसंकोच अपने मनकी बात लिख गया हूँ। बुरा तो आप मानेंगे ही नहीं, ऐसा मेरा विश्वास है। मेरे अन्तर्हृदयका सप्रेम यथायोग्य।

राधा राधा राधा राधा

* * * * *

[२]

श्रीयुत मोहनलालजी,

श्रीस्वामीजी महाराजने लिखवाया है—

आपका पत्र मिला। उत्तरमें रूखी बात लिखानी है। वह यह कि असलमें आप वृन्दावन जाकर भी वृन्दावनबिहारीको नहीं देख पा रहे हैं। आपको वृन्दावनबिहारी न दीखकर अधिक समय दीखता है संसार। यही कारण है कि जैसा जीवन आपका होना चाहिये, वैसा नहीं हो पा रहा है तथा जबतक आप पूरी दृढ़तासे अपने जीवनकी धारा प्रिया-प्रियतमकी ओर मोड़ना नहीं चाहेंगे, तबतक कोई दूसरा ऐसा कर दे, यह सम्भव नहीं। यह आपको ही करना पड़ेगा। आज करें, मरते समयतक करें, कभी भी करें, करना आपको ही है, अतः अभीसे सावधान होकर यह कार्य कर लें तो अनर्थकर दुःख, चिन्ता, फिकरसे बच जायँ। काम भी कठिन नहीं। केवल इतना ही करना है :—

१. कानसे प्रिया-प्रियतमकी चर्चाके सिवा दूसरा शब्द जहाँतक सम्भव हो, बिल्कुल नहीं सुने।

२. आँखसे प्रिया-प्रियतमके सम्बन्धकी चीजोंके सिवा और दूसरी वस्तु यथासम्भव नहीं देखें।

३. वाणीसे राधाकृष्ण-राधाकृष्णकी पुकार एक क्षण भी न छोड़े। बस, फिर जीवनकी धारा वृन्दावनबिहारीकी ओर बह चलेगी। उस धारामें स्नान करते-करते प्रिया-प्रियतम किसी दिन प्रकट हो जायेंगे और आप निहाल हो जायेंगे।

राधा राधा राधा राधा

* * * * *

रासलीलाके ठाकुर में ठाकुरावेश

सन् १९४९ के आस-पासकी बात है। स्वामी श्रीश्रीरामजी शर्माने अपनी नयी-नयी रासमण्डलीका गठन किया था और वे रासमण्डली लेकर वृन्दावनसे समस्तीपुर (बिहार) की ओर जानेवाले थे। यात्रा बहुत दूरकी थी, अतः वृन्दावनमें श्रीमोहनलालजीने सुझाव दिया कि आप लोग मार्गके बीचमें एक-दो दिन गोरखपुरमें ठहर जाइये। यह सुझाव स्वामी श्रीश्रीरामजीको प्रिय लगा। श्रीमोहनलालजीने श्रीठकुरी बाबूके नाम एक पत्र भी लिख दिया। गोरखपुर आकर श्रीश्रीरामजीकी रासमण्डली श्रीठकुरी बाबूके यहाँ ठहर गयी। गोरखपुरके रास-प्रेमी लोग कहने लगे – जब रासमण्डली आ ही गयी है तो एक झाँकी और एक लीला भी हो जाय।

यह प्रस्ताव तो स्वामी श्रीश्रीरामजीने स्वीकार कर लिया, परंतु एक बड़ी कठिनाई थी। विपत्ति अकेले नहीं आती। अभी रासमण्डली नयी-नयी बनायी थी, अतः साज-सज्जाका सामान बहुत अधिक नहीं था और जो थोड़ा-बहुत संग्रह था, शृङ्गारका वह सारा सामान राहमें चोरी चला गया था। पहननेवाली धोतीको पीले रंगमें रंग करके और उसपर साधारण नकली गोटा लगा करके परिधान बनाया गया। मोर-मुकुट भी अति साधारण था। पर्दा भी साधारणसे साधारण। मंचकी सज्जाके बारेमें कुछ न कहा जाय तो उत्तम रहेगा। बस, कहने भरके लिये नाम मात्रकी सज्जा थी। वेष, शृङ्गार, मंच-सज्जा, सभीका स्तर अति साधारण ही था, परंतु आश्चर्य तो यह है उस साधारणमें असाधारणका अवतरण हो उठा और दर्शकगण विमुग्ध-विलुब्ध भावसे रासलीलाको देखते ही रह गये। पहले तो केवल एक दिनके लिये लीला होनेकी बात कही गयी थी, पर अब लोग इतने प्रभावित हुए कि कई दिनोंतक ठहरनेके लिये अनुरोध किया जाने लगा। लोगोंके अनुरोधपर रासमण्डली गोरखपुर ठहर गयी।

रासलीलाकी ख्याति क्रमशः फैलने लग गयी। इस रासमण्डलीमें श्रीकृष्णस्वरूप बना करते थे ठाकुर श्रीघनश्यामजी। ठाकुरजीने एक बार

बतलाया था – लीला आरम्भ होनेके सात-आठ दिन बाद दो व्यक्ति रासलीला देखनेके लिये आये। वहाँके व्यवस्थापक लोगोंने उनके आगमनको बहुत अधिक महत्त्व दिया और उनको अति सम्मानपूर्वक बैठाया। वे दोनों ही व्यक्ति मोटे थे। मुझे ऐसा लगा कि ये दोनों मोटे व्यक्ति गोरखपुरके कोई बहुत बड़े सेठ हैं। जो भी हो, ये दोनों व्यक्ति मुझे बड़े प्रिय लगे। बादमें पता चला कि ये दोनों व्यक्ति ही 'कल्याण' पत्रिकाके सम्पादक हैं श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार और श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी।

भाई श्रीरामदासजी जालानके आग्रहपर ही बाबूजी रासलीला देखनेके लिये गये थे। कुछ दिनोंके बाद बाबूजीके साथ बाबा भी गये। बाबूजीके पार्श्वमें ही बाबाका आसन था। ज्यों ही मंचका पर्दा हटा और बाबाने सिंहासनासीन ठाकुरस्वरूपको देखा, बाबाको उनमें एक विचित्र आकर्षण लगा। ठाकुरस्वरूपमें बाबाको व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णकी एक प्यारी-सी झलक दिखलायी दी। बाबाने परीक्षा लेनेके विचारसे मन-ही-मन कहा – मुझे जो दिव्याभास मिला है, उसको सत्य तब मानूँ, जब यह ठाकुर आज रासके आरम्भमें 'बन्यौ मोर मुकुट नटवर वपु स्याम सुन्दर कमल नैन' वाला पद गाये।

यद्यपि मण्डलीके प्रमुख समाजीके रूपमें श्रीश्रीरामजीने हारमोनियमपर कोई एक दूसरे पदका गायन आरम्भ कर दिया था, इसके बाद भी ठाकुरस्वरूपने वही पद गाया, जिसके बारेमें बाबाने मन-ही-मन सोचा था। स्वामी श्रीश्रीरामजी द्वारा आरम्भ किये गये पदको नहीं, बाबाद्वारा सोचे गये नये पदको ठाकुरस्वरूपने गाया था, इससे बाबाको उस दिव्याभासपर विश्वास होने लग गया, पर बाबाने पुनः सोचा कि हो सकता है, ऐसा संयोगसे हो गया हो। बाबाने अपने संदेहके निवारणके लिये पुनः मन-ही-मन कहा – यदि यह ठाकुर आज रासमें नृत्य अमुक प्रकारकी पद्धतिसे करे तो मैं सच मान लूँ कि इस ठाकुरस्वरूपमें श्रीकृष्णावेश है।

क्या ही आश्चर्य, नृत्यके आरम्भ होते ही ठाकुरस्वरूपने ठीक उसी प्रकारकी पद्धतिसे नृत्य किया। ऐसे लगभग नौ-दस बार बाबाने

मन-ही-मन परीक्षा ली और प्रत्येक बार ठाकुरस्वरूपने वैसा कर दिया। प्रत्येक परीक्षामें ठाकुरस्वरूपको सफल देखकर बाबाका ठाकुरजीके प्रति सहज आकर्षण हो गया। उस दिनकी रासलीलाके बारेमें बाबा कई बार कहा करते थे – उस दिन तो लीलाका सारा नियन्त्रण और संचालन मेरे द्वारा हो रहा था और इस तथ्यको मेरे अतिरिक्त कोई जानता भी नहीं था।

अब बाबा रासलीला देखनेके लिये जाने लगे। बाबा और बाबूजीके प्रति ठाकुरजीका भी आकर्षण हो गया था। इतना ही नहीं, जहाँ इन युगल विभूतियोंका निवास था, उस गीतावाटिकाकी ओर सम्पूर्ण रासमण्डलीवालोंका मन आकृष्ट हो गया था। रासमण्डली श्रीठकुरी बाबूके यहाँ ठहरी हुई थी और उनके यहाँ घोड़ेकी एक बग्घी थी। रासमण्डलीके स्वरूप बग्घीपर चढ़कर गीतावाटिका आया करते थे। जब पहली बार रासमण्डलीके स्वरूप गीतावाटिका आये, उस समयका एक प्रसंग है। अन्य सब लोग तो वाटिकाकी कोठीके उस कमरेकी ओर बढ़े, जहाँ बैठकर बाबूजी 'कल्याण' पत्रिकाका सम्पादन किया करते थे, परंतु ठाकुरजीके मनमें चाव था बाबाके दर्शनका। ठाकुरजीने एक व्यक्तिसे पूछा कि बाबा कहाँ रहते हैं। उस व्यक्तिने बाबाकी कुटियाकी ओर संकेत कर दिया। तब कुटियाके चारों ओर बाड़ा नहीं बना था। ठाकुरजी सीधे कुटियाकी ओर गये। कुटियाके पीछेवाली खिड़कीसे झाँकनेपर ठाकुरजीने देखा कि बाबा अपने बिस्तरपर लेटे हुए हैं। उनके दाहिने हाथमें तुलसीकी जपमाला नाम-जप करनेके लिये है और बाँयें हाथमें कमलकी माला जपकी संख्या रखनेके लिये है। वे लेटे-लेटे जप कर रहे हैं और उनके नेत्रोंसे टप-टप अश्रु झर रहे हैं। वे अश्रु-बिन्दु तकियेको भिगो रहे हैं। यह दृश्य ठाकुरजीको बड़ा प्रिय लगा। ठाकुरजी तुरंत लौटकर श्रीश्रीजीस्वरूपको बुला लाये। श्रीश्रीजी और ठाकुरजी दोनों द्वारपर खड़े हो गये और कुटियाका दरवाजा खटखटाने लगे। ठाकुरजीके मनमें न किसी प्रकारका संकोच था और न भय। ठाकुरजीको बाबा अपनेसे भी बढ़कर अपने लग रहे थे। बाबाने उठकर दरवाजा खोला। श्रीश्रीजी और ठाकुरजीको देखकर उन्हें बड़ी

प्रसन्नता हुई। बाबाने दोनोंको कुटियाके अन्दर बुला लिया। दोनों स्वरूपोंको अपने बिस्तरपर बैठाकर बाबा स्वयं भूमिपर बैठ गये। उस समय बाबाके पास सुगन्धित फूलोंके दो गजरे रखे हुए थे। बाबाने एक गजरा श्रीश्रीजीको और एक गजरा ठाकुरजीको पहना दिया।

श्रीश्रीजी तथा ठाकुरजी बाबाके पास बैठे ही होंगे कि उसी समय बाबूजीके पाससे बाबाके लिये बुलावा आ गया। अब तो सभी कुटियाके बाहर निकल पड़े। बाबा, श्रीश्रीजी तथा ठाकुरजी, तीनों ही बाबूजीके पास जा रहे थे कि इसी बीच श्रीश्रीजीस्वरूप न जाने किधर चले गये। हो सकता है, किसी कार्यसे इधर-उधर चले गये हों। ठाकुरजीके मनमें कोई भाव उभरा। ये स्वभावसे थोड़े चपल-चञ्चल थे ही। बाबा तो गये बाबूजीके पास और ठाकुरजी पुनः बाबाकी कुटियामें आ गये। जब तीनों लोग कुटियासे बाहर निकले थे तो श्रीश्रीजीने और ठाकुरजीने उन गजरोंको बाबाके बिस्तरपर ही छोड़ दिया था। कुटियामें वापस आकर ठाकुरजीने वे दोनों गजरे कलात्मक रीतिसे बाबाके बिस्तरपर ही सजा दिये। उन दोनों पुष्प-मालाओंको सजाकर रखनेके बाद ठाकुरजीने कुटियाको पूर्ववत् बन्द कर दिया और फिर आ गये बाबूजीके पास। वहाँ बाबूजीके पास ठाकुरजीकी खोज हो ही रही थी कि वे कहाँ गये। ठाकुरजीके पहुँचते ही रासमण्डलीके सभी स्वरूपोंका स्वागत-सत्कार किया जाने लगा। स्वरूपोंको अधिक-से-अधिक सम्मान दिया गया। इसके बाद स्वरूपोंको विदाई दी गयी और वे लोग बग्घीपर चढ़कर अपने डेरेपर वापस आ गये।

स्वरूपोंके विदा होते ही बाबा अपनी कुटियापर आये। बिस्तरके तकियेपर पुष्प-मालाएँ जिस प्रकारसे सज्जित थीं, उस सज्जा-शैलीको देखकर बाबाको बड़ा आश्चर्य हुआ। आज बाबाने अपने लीला-राज्यमें पुष्प-मालाओंकी जो छवि देखी थी, वही छवि इस समय दो नेत्रोंका प्रत्यक्ष दृश्य बनी हुई थी। वहाँ निकुञ्जमें श्रीप्रिया-प्रियतम-युगलके पुष्प-शृङ्गारके उपरान्त युगल पुष्प-मालाओंके पारस्परिक सुगुम्फनसे जो सुन्दर आकृति बनी थी, उसी आकृतिकी सर्वथा अनुकृति बाबा देख रहे थे यहाँ अपने बिस्तरपर। उस आकृति और इस अनुकृतिमें एक

पंखुड़ीका भी तो अन्तर नहीं था। बाबा जड़वत् बहुत देरतक बिस्तरपर सजा करके रखी हुई पुष्पमालाको देखते रहे। तभी बाबाको एक पुरानी बातकी स्मृति हो आयी। प्रियतम श्रीकृष्णने बाबासे कहा था कि मैं लगभग दो वर्ष बाद तुम्हारे पास रासके ठाकुरके रूपमें आऊँगा। इसका स्मरण होते ही बाबाको ऐसा लगा कि इस ठाकुरस्वरूपके रूपमें सम्भवतः वे प्रियतम श्रीव्रजेन्द्रनन्दन ही आये हैं। बिस्तरके तकियेपर शोभायमान पुष्प-मालाकी सुसज्जा-शैली बार-बार उस बातकी स्मृति दिला रही थी।

रासमण्डली गोरखपुरमें कई सप्ताह रही और मण्डलीके स्वरूप प्रायः गीतावाटिका आ जाया करते थे। ठाकुरस्वरूपका बाबा, बाबूजी और गोस्वामीजीके प्रति एक भाव-भरा आकर्षण था। एक बारकी बात है। सभी स्वरूप गीतावाटिका आये हुए थे, पर आज ठाकुरजीको डेरेपर वापस जानेकी जल्दी थी। बग्घीपर ठाकुरजी बैठ गये, सभी सखी-स्वरूप बैठ गये, परंतु श्रीश्रीजी-स्वरूपका आगमन अभी नहीं हुआ था। वे बाबाके पास बैठे थे। कुटियामें बैठे हुए बाबासे बात कर रहे थे। ठाकुरजीने दो-तीन बार बुलावा भेजा, पर वे दोनों तो बात करनेमें अत्यधिक तल्लीन थे। ठाकुरजीको तनिक आवेश हो आया और वे बोले – श्रीजी क्या बाबाके घरकी हैं, जो आने नहीं देते?

ठाकुरजीने ऐसा कहा ही था कि श्रीश्रीजीस्वरूप आ गये और सभी स्वरूप बग्घीसे अपने डेरेपर चले आये। उन स्वरूपोंके चले जानेके बाद बाबाको पता चला कि ठाकुरजी आवेशमें ऐसा-ऐसा बोल रहे थे। इतना सुनकर बाबाको भी भावावेश हो आया और वे अपने भाव-स्वरूपमें प्रतिष्ठित होकर मन-ही-मन कहने लगे – ठाकुरने ऐसी बात कैसे कह दी? सखी और श्रीजीके बीचमें ठाकुरको हस्तक्षेप करनेका क्या अधिकार है? श्रीजीपर सखीका जितना अधिकार है, उसे जानते हुए भी ठाकुर क्यों अनजान-से बन रहे हैं? ठाकुर जा सकते हैं श्रीजीके पास तब ही, जब सखी चाहती है। जिस समय सखी ड्यौढ़ी बन्द कर देती है, उस समय ठाकुर ही सखीके चरणोंपर गिरते हैं और हा-हा खाते हैं। सखीके प्रसन्न और अनुकूल होनेपर ही ठाकुरका निकुञ्जमें प्रवेश सम्भव है। यह सब जानते हुए भी ठाकुरने ऐसा कैसे कह दिया कि क्या श्रीजी बाबाके घरकी हैं?

बाबा इस प्रकारके भावों-विचारोंमें लहरा-उतरा रहे थे। बाबाने

निश्चय किया कि ठाकुरकी इस वाचालताको अनुशासित करना चाहिये। बाबूजीके पास लाल रंगकी नैश नामक एक मोटरकार थी। नैश कारपर चढ़कर बाबा साहबगंज गये। साहबगंज मोहल्लेमें ही रासमण्डलीका डेरा था। डेरेके ऊपरी कमरेमें सभी स्वरूप भोजन कर रहे थे, केवल ठाकुरजी नीचे थे और घरके बाहरी चबूतरेपर चुपचाप टहल रहे थे। उसी समय चबूतरेके पास आकर लाल रंगवाली नैश कार खड़ी हुई। किसीने उल्लास-भरे स्वरमें कहा – स्वामीजी आ गये, स्वामीजी आ गये।

इस उन्मुक्त स्वरको सुनते ही ठाकुरजी मुड़े और देखा कि कारमें अगली सीटपर बाबा बैठे हुए हैं। ठाकुरजी लपक करके आगे बढ़े, अगली सीटका दरवाजा खोला और बाबाका हाथ पकड़कर कारसे नीचे उतारा। ठाकुरजीने बाबाको कारसे ज्यों ही उतारा, त्यों ही उन्होंने बाबासे कहा – सबसे पहले आप मेरे गालपर चपत लगाइये।

यह सुनते ही बाबा वहीं सड़कपर मूर्तिवत् खड़े-के-खड़े रह गये। बाबा रास्ते भर यही सोचते आ रहे थे कि ठाकुरको सबसे पहले गालपर चपत लगाऊँगा। बाबा जो बात सोचते आ रहे थे, वही बात इस ठाकुरने कैसे कह दी? भाव-विभोर और चिन्तन-लीन बाबाको ठाकुरजी बड़ी कठिनाईसे ऊपर ले आये। बाबा तीन घंटेतक लगातार भाव-निमग्न बैठे रहे। जब भाव कुछ शमित हुआ तो बाबा कारसे गीतावाटिका आये। वाटिका आनेके बाद भी विभोरताकी स्थिति घंटोंतक बनी रही।

एक बार ठकुरीबाबूके बगीचेमें रासलीला हो रही थी। बगीचेके पेड़-पौधोंने, लताओं-झाड़ियोंने फूलों-फलोंने स्वतः ही वनका सुरम्य वातावरण उपस्थित कर दिया। बगीचेकी हरियालीसे लीलामें सहज ही स्वाभाविकता एवं प्रभावोत्पादकता उभर आयी। बाबा भी लीला देख रहे थे। रासलीला देखते-देखते बाबाको ऐसा लगा कि ठाकुरके अधरोंसे दिव्य सुधारसका निर्झरण हो रहा है। यह देखते ही बाबाको बड़ा विस्मय हुआ और बाबा सोचने लगे – यह क्या दिखलायी दे रहा है? कहीं यह मेरी मात्र भावना तो नहीं है? क्या वस्तुतः चिन्मय राज्यका वह महामधुमय सुधारस इन अधरोंसे झर रहा है? इसे मैं पूर्ण सत्यके रूपमें स्वीकार तब करूँ, जब मेरे मनकी एक बात हो जाय। यदि यह ठाकुर स्वतः अपना कोई उच्छिष्ट पदार्थ मुझे खिलावे और उस सुधारसका आस्वादन मुझे भी मिले, तब मैं मानूँ कि ठाकुरके अधरोंसे वह दिव्य सुधारस झर रहा है।

इधर तो बाबा अपने मनमें ऐसा विचार कर रहे थे, उधर ठाकुरजीने तत्काल वृक्षसे अमरूदका फल तोड़ा, उसमेंसे थोड़ा खाया और उसी समय बाबाके पास आकर उनके मुखमें अपना उच्छिष्ट दे दिया। बाबाको बड़े विचित्र स्वादकी अनुभूति हुई। वह स्वाद इस लोकका था ही नहीं।

* * *

रासके ठाकुर-स्वरूपके उच्छिष्ट प्रसादको ग्रहण करनेकी दृष्टिसे एक बार एक विचित्र प्रसंग बाबाके सामने उपस्थित हो गया था। रासलीलाकी ख्याति दिन-प्रति-दिन बढ़ती ही जा रही थी और इसीके साथ बढ़ रही थी भक्त दर्शकोंकी संख्या भी। रासलीलाके दर्शक समुदायमें कुछ भावुक भक्त ऐसे भी थे, जिनका रासके ठाकुरके प्रति स्वाभाविक भगवद्भाव था। इन भावुक भक्तोंकी चाह रहा करती थी कि ठाकुरका उच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण करनेके लिये मिला करे, परंतु अत्यधिक मर्यादावादी श्रीसेठजी (पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दका) के कारण उनमें उच्छिष्ट प्रसाद लेनेका साहस नहीं हो पाता था। उच्छिष्ट प्रसादकी चाह जब बहुत बढ़ गयी तो भावुक भक्तोंने एक योजना बनायी। उन्होंने सोचा कि यदि बाबा किसी प्रकार रासके ठाकुरका उच्छिष्ट प्रसाद पा लें तो बात बन जायेगी। इन भक्तोंने रासके ठाकुरको अपनी योजनानुसार पटा लिया। लीला हो चुकनेके बाद ठाकुरजी बाबाके पास आये और बाबाके हाथमें अपना उच्छिष्ट प्रसाद देकर कहा – इसे पा लें।

बूँदीका उच्छिष्ट प्रसाद बाबाके हाथमें था। बाबाके लिये बड़ा धर्म-संकट उपस्थित हो गया। संन्यासी वस्त्रकी मर्यादाके अनुसार उच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण करना उचित नहीं और रासलीलाकी मर्यादाके अनुसार ठाकुरके वचनोंकी अवहेलना करना उचित नहीं। उच्छिष्ट प्रसाद अपने कर-पल्लवपर लिये-लिये बाबा बहुत देरतक खड़े रहे। वे किंकर्तव्य-विमूढ़ हो रहे थे। आस-पास खड़े लोगोंकी दृष्टि बाबापर गड़ी हुई थी। बाबाके मनमें आया – अपनी दो अँगुलियोंके मध्य बूँदीका एक दाना दबा लूँ। इस दानेको बादमें पा लूँगा और अपने संन्यासी वेषकी रक्षाके लिये शेष सारा प्रसाद किसी अन्यको दे दूँ।

इस विचारके उभरते ही तुरन्त दूसरा विचार आया – यह तो मेरे समक्ष खड़े ठाकुरजीकी वंचना होगी। ठाकुरके वचनका पूर्ण सम्मान करनेके

लिये यह प्रसाद मुझे अवश्य पा लेना चाहिये।

ठाकुरजीके वचन एवं प्रसादका सम्मान करनेके लिये एक बूँदीका भी अल्पांश, मात्र एक कण बाबाने खा लिया और शेषांश श्रीगोस्वामीजी (पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी) को दे दिया, जो पासमें ही खड़े थे। स्पर्शास्पर्शका अत्यधिक विचार रखनेवाले श्रीगोस्वामीजीने भी वह उच्छिष्ट प्रसाद किसी प्रकारका विचार किये बिना ही तत्क्षण पा लिया, इसीलिये कि बाबाने उनको दिया था। उन भावुक भक्तोंकी योजना आवश्यकतासे अधिक पूर्ण हो चुकी थी। उनकी योजनाके जालमें एक नहीं, दो सम्माननीय व्यक्ति आ चुके थे और उनके लिये तो उच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण करनेके लिये मार्ग खुल गया था।

इस प्रसंगसे मार्ग खुला उनके लिये, जिनके हृदयमें श्रद्धाका भाव था, परंतु अपचर्चाके लिये एक अच्छा विषय मिल गया उनके लिये भी, जो लोग छिद्रान्वेषी थे। एक छिद्रान्वेषी व्यक्ति सेठजी और बाबाके मध्य खाई खोदनेके लिये तथ्योंको एवं उक्तियोंको विकृत रूपमें प्रस्तुत करने लगा। वह अपने मन्थरा-स्वभावके वशीभूत होकर ऐसा कर रहा था। श्रीसेठजीकी बातको विकृत करके बाबासे कहना और बाबाकी बातको तोड़-मरोड़ करके श्रीसेठजीसे कहना, इस प्रकार उसने उच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण करनेवाली बातको इतना अधिक विकृत रूप प्रदान कर दिया कि बाबा बाबूजीसे आज्ञा लेकर गोरखपुरसे वृन्दावन चले जानेका विचार करने लगे।

संयोगकी बात, जब बाबा इस प्रकार सोच रहे थे, तभी उनसे मिलनेके लिये कलकत्तेके श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया आये। श्रीकानोड़ियाजीका तीनों विभूतियों – श्रीसेठजी, बाबूजी एवं बाबाके प्रति अत्यन्त श्रद्धा-भाव था। बाबाने श्रीकानोड़ियाजीको सारा वृत्त बताकर कहा – जब श्रीसेठजीको मेरा यहाँ रहना उचित नहीं लग रहा है, तब मैं क्यों रहूँ? मैं सोच रहा हूँ कि अब मुझे वृन्दावन चले जाना चाहिये।

श्रीकानोड़ियाजीने तुरन्त प्रतिवाद किया – श्रीसेठजी न ऐसा सोच सकते हैं और न ऐसा कह सकते हैं। मुझे संदेह है कि किसीने परिस्थितिको बिगाड़ दिया है। मैं अभी श्रीसेठजीके पास जाता हूँ।

श्रीकानोड़ियाजी तुरन्त गीतावाटिकासे गीताप्रेस आये और श्रीसेठजीको सब बातें बतलायी। श्रीसेठजी तो आश्चर्य करने लगे और उन्होंने कहा – मैंने तो ऐसा कहा ही नहीं है। आप गीतावाटिका जाकर

स्वामीजीसे कहें कि मैं प्रातःकाल आकर उनसे भेंट करूँगा।

श्रीकानोड़ियाजीने श्रीसेठजीका संदेश बाबाको दिया। इसके बाद उन्होंने सारी स्थिति बाबूजीको बतलायी। बाबूजीको कुछ पता ही नहीं था। इसे सुनते ही बाबूजी क्षुब्ध हो उठे और कहने लगे – जगतके लोग भी कैसे हैं, जिन्हें बात बिगाड़नेमें ही आनन्द आता है। यह भला कैसे सम्भव है कि बाबा यहाँसे चले जायें?

प्रातःकाल श्रीसेठजी गीतावाटिका आकर बाबासे मिले तथा कहा – यह मैंने कब कहा कि स्वामीजी हमलोगोंको छोड़कर चले जायें? मैंने मात्र इतना ही कहा था कि स्वामीजी द्वारा उच्छिष्ट प्रसाद लिया जाना मुझे उचित नहीं लगा। इस कथनका यह अर्थ कदापि नहीं कि आप हमलोगोंका साथ छोड़कर चले जायँ। आपके चले जानेके लिये तो मैंने कभी कहा ही नहीं। इतना ही नहीं, इस बातसे सम्बन्धित कोई स्फुरणा मेरे मनमें कभी उदित ही नहीं हुई। मैं तो भगवानसे यहाँतक प्रार्थना करता हूँ कि यदि मेरे प्रसुप्त मनमें इस प्रकारकी कोई भी बात हो तो वे उसकी छायाको तुरन्त मिटा दें।

श्रीसेठजीकी छल-रहित एवं प्रीति-भरित उक्ति सुनकर बाबाका हृदय द्रवित हो उठा। आने-जानेकी बात अब सर्वथा समाप्त हो गयी। अन्तिम निवेदनके रूपमें श्रीसेठजीने बाबासे इतना अवश्य कहा – मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप भविष्यमें यदि उच्छिष्ट ग्रहण न करें तो उत्तम बात रहेगी।

बाबाने श्रीसेठजीसे कहा – मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं आपके इस अनुरोधका अक्षरशः पालन करूँगा, परंतु किसी परिस्थितिमें उलझकर यदि विवशतावशात् उच्छिष्ट प्रसादका मात्र कणांश कभी मुझे ग्रहण करना पड़ जाय तो इसके लिये आपको विचार नहीं करना चाहिये।

यह सुनकर श्रीसेठजी मुस्कुराने लगे। अकारण ही जो विषम परिस्थिति उत्पन्न हो गयी थी, वह सर्वथा समाप्त हो गयी।

* * *

इसके अगले वर्ष जब रासमण्डली आयी, तब वह शहरमें नहीं, आदरणीया बाई (श्रीसावित्रीबाई फोगला) की बगीची 'श्रीकृष्ण निकेतन'में ठहरायी गयी। बगीचीमें बड़ी सुन्दर फुलवारी थी। ठाकुर-स्वरूप

श्रीघनश्यामजी तथा अन्य स्वरूप अपने सहज बाल्य स्वभावसे फलोंके पौधोंमें जल दे रहे थे। इसी समय बाबा गीतावाटिकासे श्रीकृष्णनिकेतन गोस्वामीजीको साथ लेकर पहुँच गये। दूरसे ही बाबाने देखा कि वे स्वरूप कुएँसे जल निकाल-निकाल करके पौधोंको सींच रहे हैं। उनके घुँघराले केश, उनका बालोचित चापल्य, उनकी स्वाभाविक चेष्टाएँ, उनका उन्मुक्त संभाषण, उनका वृक्ष-सिंचन, इन सबको देखकर बाबाको बड़ा उद्दीपन हुआ। बाबाको यही लगा कि निकुञ्जकी सखियाँ श्रीप्रियाजीकी फुलवारीको सींच रही हैं। बाबा एक वृक्षकी ओटमें छिप गये और बहुत देरतक यह दृश्य देखते रहे। बाबाने गोस्वामीजीको अँगुलियोंसे निर्देश दे दिया था कि आप आनेका संकेत न दें। स्वरूपोंको बहुत देर बाद पता चल पाया कि बाबा आये हुए हैं।

इस बार बाबाने जो एक विशिष्ट रासलीला करवायी, उसका उल्लेख करना आवश्यक है। लीलाके भावोंकी पवित्रता एवं गम्भीरताको बनाये रखनेके लिये यह लीला पूर्णतः एकान्तमें हुई। इस लीलाके अभिनीत होनेकी सूचना किसीको नहीं दी गयी और यह लीला मध्य रात्रिके समय आरम्भ हुई। लीला पूरे तीन-चार घंटे हुई, परंतु इसमें कुल दर्शक ग्यारह ही थे — माँ, बाबूजी, गोस्वामीजी आदि चुने हुए व्यक्ति। लीलाके आरम्भ होते ही द्वारपर ताला लगा दिया गया, जिससे अन्य कोई प्रवेश न कर सके। इस दिन गुणी-जन-लीला हुई और लीलाके समय वातावरण इतना अधिक गम्भीर था कि कोई सीमा नहीं। लीलाके बाद बाबा तीन दिनतक भावमें गहरे डूबे रहे। गहरी भाव-निमग्नताके कारण उनको भिक्षा करा सकना भी कठिन हो गया था।

एक बार और इसी रीतिसे बाबाने रासलीला करवायी। दूसरी बार दर्शक कुल इक्कीस लोग थे। यह बाध्यता थी कि सभी दर्शकोंको स्नान करके और नवीन शुद्ध वस्त्र धारण करके ही बैठना था। इस लीलाका प्रभाव भी इतना अधिक पड़ा कि लीलाके दृश्य एवं संवाद लोगोंके हृदयपर कई दिनोंतक छाये रहे।

* * * * *

श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल को दीक्षा

सन् १९४५ में बी.ए.की परीक्षा दे देनेके बाद श्रीकृष्णचन्द्र अग्रवाल रतनगढ़में बाबूजी और बाबाके पास चले आये और इसी सन् १९४५ के जून मासमें इन युगल विभूतियोंके साथ रतनगढ़से गोरखपुर आ गये। गोरखपुर आनेके बाद कृष्णजी बाबाकी सेवामें संलग्न रहने लगे। बाबाको भिक्षा करवाना, कुटियाकी सफाई करना और उनके आदेशानुसार साधन-भजन करना, यही उनका जीवन था।

सच्ची सेवा सेव्यके हृदयको आकृष्ट कर ही लेती है। सतत सेवा सेवकको सेव्यसे एकाकार बना देती है। स्वार्थ भावसे सर्वथा शून्य होकर की जानेवाली सेवा सचमुच एक चमत्कार उपस्थित कर देती है। कृष्णजीकी सेवा-भावनापर बाबा भीतरी मनसे रीझे हुए थे। वे तो बाबाको अपना गुरु मानते थे, पर बाबा उनको शिष्य नहीं, बल्कि मात्र मित्र मानते थे। जो मात्र मित्र मानते थे, वे ही बाबा अब कृष्णजीको विधिवत् मंत्र-दीक्षा देनेका विचार करने लगे। बाबाके मनमें ऐसे विचारका उद्भव क्यों हुआ, इसकी पृष्ठभूमि भी अटपटी और अनोखी है।

बाबा तो कट्टर वेदान्ती थे, पर उनके जीवनमें व्रजभावका बीजारोपण हुआ तब, जब सन् १९३६ में बाबूजीने तेइस वर्षीय युवक संन्यासी बाबाको चरण-नख छूकर प्रणाम किया था। इस घटनाके तीन साल बाद सन् १९३९ में बाबाकी भाव-साधनामें कुछ बाधा आ गयी थी, तब बाबूजीने सूक्ष्म देहसे पधारकर बाबाके कर-नखका स्पर्श किया था और इससे उनकी भाव-साधनाका रसमय पथ प्रशस्त हो गया था। बाबा रस-सागरमें उत्तरोत्तर गहरे-से-गहरे उतरते चले गये।

जब बाबाने सन् १९५६ में प्रथम बार काष्ठ मौन लिया था, तब भरी सभामें सबके सामने एक अन्तरंग सत्यको उद्घाटित करते हुए कहा था – श्रीपोद्दार महाराज यदि गुलाबके पौधे हैं तो उस पौधेकी एक शाखापर खिलनेवाला मैं एक छोटा-सा गुलाबका फूल हूँ और सदा हँसता रहता हूँ। उस गुलाबमें तो काँटा भी होता है, पर गुलाबका यह पौधा तो कण्टक-रहित है और मुझसे भी अधिक सुन्दरतर और अधिक श्रेष्ठतर पुष्प, एक नहीं, अनेकानेक पाटल पुष्प खिला देनेकी क्षमता इस पौधेमें है।

अब एक बड़ा ही माधुर्यपूर्ण और रहस्यपूर्ण तथ्य यह है कि जिन बाबूजीके अहैतुक अनुग्रहसे अति कट्टर वेदान्ती बाबाके अन्तरमें व्रजभावका बीजारोपण

हुआ और उनके जीवनमें प्रियाप्रियतम श्रीराधामाधवकी रसमयी मधुर भक्तिकी रसधारा प्रवाहित हुई, उन बाबूजीकी सेवा करना चाह रहा था बाबाका भावमय हृदय, पर यह संभव नहीं था। प्रथम, बाबूजी वैश्य थे और बाबा ब्राह्मणकुलोद्भूत। द्वितीय, बाबूजी गृहस्थाश्रमी थे और बाबा चतुर्थाश्रमी संन्यासी। अतः यह संभव ही नहीं था कि बाबूजी बाबासे अपनी कोई निजी सेवा करवा लें। इस विवशताकी दशामें अपनी भावनानुसार कार्य करनेके लिये बाबाने एक अन्य उपायका आश्रय लिया। वे चाहते थे कि वह उपाय सुगुप्त हो, जिससे जगतके लोग आन्तरिक उद्देश्यको तनिक भी जान नहीं पायें। बहुत चिन्तनके बाद बाबाने ऐसा निश्चय किया कि मैं अपना कोई प्रतिनिधि उनकी सेवामें नियुक्त कर दूँ और उस प्रतिनिधि व्यक्तिके द्वारा की जानेवाली सेवाका अर्थ यही होगा, मानो वह सेवा प्रच्छन्न रूपसे मेरे द्वारा सम्पन्न हो रही है, पर अवश्य ही वह व्यक्ति सही-सही रीतिसे प्रतिनिधि हो। ऐसा सोच करके बाबाने सेवापरायण कृष्णजीको संन्यासकी दीक्षा देकर अपना प्रतिनिधि बनानेका निर्णय किया।

इस निर्णयके अनुसार बाबाने कृष्णजीको संन्यासकी दीक्षा दी। यह दीक्षा स्वयं उन्होंने ही चिम्मनलालजी गोस्वामीजीकी उपस्थितिमें दी और दी गीतावाटिकाके पिछले भागमें स्थित कुएँ पर। मेरी अल्प जानकारीके अनुसार यह दीक्षा सन् १९४८ के उत्तरार्धमें दी गयी। सही-सही तिथि और वार बता सकना कठिन है, पर इतना तो निश्चित ही है कि सन् १९४८ के अन्तिम चार मास सितम्बर-अक्टूबर-नवम्बर-दिसम्बर, इन चार मासकी अवधिके भीतर ही कभी दीक्षा दी गयी होगी। दीक्षा देते समय बाबा सावधान थे और इस प्रक्रियामें केवल दो बात शेष रह गयी थी। एक तो यह कि वस्त्र श्वेत ही रखा। उनको गैरिक वस्त्र प्रदान नहीं किया। दूसरे यह कि प्राणी मात्रको अभय प्रदान करनेवाला कोई मंत्र होता है, वह मंत्र बाबाने नहीं कहा। इस प्रकार श्रीकृष्णजी बाबाके एक मात्र शिष्य हैं, जिन्हें विधिवत् दीक्षा मिली। संन्यासकी दीक्षा देकर अपने प्रतिनिधिके रूपमें बाबाने कृष्णजीको बाबूजीकी सेवामें रखा और कृष्णजीने बाबाके इस प्रतिनिधित्वको अपने तन-मन-जीवनसे निभाया। सन् १९७१ में बाबूजीने महाप्रयाण किया। उनके महाप्रयाणके बाद भी कृष्णजी पूरे परिवारकी सेवा उसी श्रद्धासे और उसी संलग्नतासे निरन्तर करते रहे।

* * * * *

आयु-वृद्धि हेतु देवाराधन

पं. श्रीमोतीलालजी पारीकसे तथा पं. श्रीसूरजमलजी शर्मासे एक विशेष देवार्चन बाबाने करवाया था। इस देवार्चनका उद्देश्य था बाबूजीके आयुकी वृद्धि। यह अनुष्ठान सन् १९४९ के उत्तर भागमें आरम्भ हुआ था और सन् १९५० के २ अप्रैल तक (चैत्र मासकी पूर्णिमातक) चला। इस अनुष्ठानमें श्रीगणेशजीका, श्रीनृसिंह भगवानका और भगवती नव-दुर्गाका विशेष पूजन-अर्चन गीतावाटिकामें होता रहा। इस अनुष्ठानके सम्पन्न होनेके बाद पं. सूरजमलजी शर्माका जीवन कल्पनातीत रूपसे बदल गया। सारी व्यावहारिकताका सर्वथा परित्याग करके उन्होंने सदाके लिये पूर्ण मौन ले लिया और हरिद्वारके पास कनखलमें वास करने लग गये। सादे वेशमें एकान्त वास करते हुए निरन्तर गायत्री मन्त्रका जप करते रहना, यही उनकी जीवनचर्या रही। बाबा जब-जब गीताभवन (ऋषिकेश) जाया करते थे, तब-तब किसी व्यक्तिको कनखल भेजकर पं. श्रीसूरजमलजीको बुलवाया करते थे मात्र भेंट करनेके लिये। वह व्यक्ति अपने साथ उन्हें कनखलसे ले आता और फिर वापस कनखल पहुँचाकर आता।

इस अनुष्ठानमें जब श्रीनवदुर्गाजीको नैवेद्य अर्पित किया जाता तो छोटे-छोटे नौ आसन बिछा दिये जाया करते थे तथा उन आसनोंके समक्ष नैवेद्य रख दिया जाता था। ऐसे प्रतिदिन होता था। एक दिन बाबाने पं. श्रीसूरजमलजीसे कहा – आप देवीसे प्रार्थना करें कि 'हे माँ! आज तो तुम प्रत्यक्ष रूपसे पधारकर नैवेद्य स्वीकार करो'।

उन्होंने ऐसा ही किया। श्रीनवदुर्गाजीके लिये नौ आसन बिछा करके तथा आसनोंके समक्ष नैवेद्य रखवा करके बाबाने दोनों अर्चकोंसे अनुरोध किया कि वे लोग पूजा-कुटीरके बाहर आ जायें, जिससे पट दे दिया जाये तथा श्रीनवदुर्गाजी नैवेद्य आरोगें। पं. श्रीसूरजमलजीने बाहर आनेके पहले एक विचित्र दृश्य देखा। पट देनेके समय भी पं. श्रीसूरजमलजी मन-ही-मन प्रार्थना कर रहे थे कि 'माँ! आप भोग स्वीकार करनेके लिये प्रत्यक्ष रूपसे पधारें'। पट दे देनेके पहले पं. श्रीसूरजमलजीने देखा – श्रीनवदुर्गा, एक नहीं, सभी पधारीं। शैलपुत्रीजी, ब्रह्मचारिणीजी, चन्द्रघण्टाजी, कूष्माण्डाजी, स्कन्दमाताजी, कात्यायनीजी, कालरात्रिजी, महागौरीजी तथा सिद्धिदात्रीजी, ये सभी उन नौ

आसनोंपर विराज गयी हैं तथा उन्होंने भोग आरोगना आरम्भ कर दिया है। पं. श्रीसूरजमलजीको बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि बिछाये गये ये सारे आसन तो अति छोटे, अति संकीर्ण हैं और कैसे ये सब इन छोटे-छोटे आसनोंपर विराज पायीं ? इस दृश्यको देखकर पं. श्रीसूरजमलजी विभोर हो उठे।

उस दिन तो श्रीनवदुर्गाजीने प्रत्यक्ष रूपसे भोग स्वीकार किया, पर अन्य दिनोंमें भी कम महत्त्वपूर्ण बात नहीं हुआ करती थी। बाबाने मनमें यह तय कर रखा था कि यदि इस प्रकारके लक्षण दिखलायी दे जायें तो यह समझा जायेगा कि आज जगदम्बाने भोग स्वीकार कर लिया है। नैवेद्य तैयार हो जानेके बाद भोग श्रीनवदुर्गाजीके समक्ष समर्पित कर दिया जाता था। जैसा बाबाने मनमें तय कर रखा था, यदि वैसा लक्षण नहीं मिलता तो नये सिरेसे कार्यारम्भ होता। बर्तनोंको फिरसे माँजकर दूसरे व्यक्तिके द्वारा शुद्धतापूर्वक नैवेद्य-निर्माणका कार्य होता था। पुनः भोग समर्पित किया जाता था। यदि लक्षण मिल गये तो ऐसा मान लिया जाता था कि देवीके द्वारा भोग स्वीकार कर लिया गया है। यदि लक्षण पुनः नहीं मिलते तो बाबा यही समझते कि निर्माण-कार्यमें किसी अशुद्धिके कारण अथवा निर्माणकर्ताके किसी भाव-दोषके कारण देवीने भोग स्वीकार नहीं किया है। अतः फिर नये सिरेसे नैवेद्य-निर्माणका सारा कार्य होता। एक बार तो बाबाको एक दिनमें छः बार नैवेद्य बनवाना पड़ा था, पर अन्तमें बाबाको सफलता मिली ही।

इस अनुष्ठानके पूर्ण होनेपर श्रीमोतीजीको एक बार सुनायी पड़ा — 'सत आयु हो ! सत आयु हो !! सत आयु हो !!!'

इस दैवी आशीर्वादको सुनकर श्रीमोतीजी बड़े प्रसन्न हुए कि अनुष्ठान सफल हो गया, परंतु उनके मनमें एक संदेह भी घर कर गया। इस दैवी आशीर्वादमें शब्द 'शत' है अथवा 'सत' है ? यदि दन्त्य 'स' है, तब तो बाबूजीकी आयु सात वर्षके लिये बढ़ गयी है और यदि तालव्य 'श' है, तब तो आयु सौ वर्षकी हो गयी है। शब्द 'शत' हो अथवा 'सत', आयुमें वृद्धि तो हुई ही है और एतदर्थ सभीके मनमें प्रसन्नता तो थी ही, परंतु आशीर्वादके अर्थकी वास्तविकताको लेकर मनमें दुविधा भी थी।

वस्तुतः ये दोनों ही अर्थ नहीं थे। वास्तविक अर्थका परिज्ञान तो सन् १९७१ ई. में हुआ, जब बाबूजीने महाप्रस्थान किया। दैवी आशीर्वादमें 'सत' शब्दका प्रयोग तीन बार हुआ था और दैवी आशीर्वादके अनुसार इस

अनुष्ठानके बाद बाबूजी तीन सत (३×७) अर्थात् २१ वर्षतक इस भूतलपर विराजे रहे।

* * *

इसी प्रकार बाबाने श्रीमोतीजीसे भगवान नारायणका एक और अनुष्ठान करवाया था। ब्राह्म मुहूर्तकी बात है। श्रीमोतीजी सोकर उठे। उन्होंने देखा कि उनके सामने एक बालक खड़ा है। श्रीमोतीजीने अपने अटपटे ढंगसे, जिसमें कोई सम्मानसूचक शब्द नहीं थे, उस बालकसे पूछा – अरे! तू कौन है? यहाँ मेरे पास क्यों आया है?

उस बालकने कहा – आजकल चल रहे अनुष्ठानमें आप किनकी पूजा किया करते हैं?

श्रीमोतीजीने सहज ढंगसे बतलाया – मैं तो भगवान नारायणकी पूजा किया करता हूँ।

तब उस बालकने कहा – वह नारायण मैं ही हूँ। जाकर बाबासे कह दें कि जिस निमित्तसे यह अनुष्ठान चल रहा था, वह सफल हो गया।

ऐसा सुन करके और उस बालकमें कोई दिव्य झलक पा करके श्रीमोतीजी उन्मत्त हो गये। वे वहीं नृत्य करने लग गये। उस उन्मत्तावस्थामें कई घण्टे निकल गये। भावके शमित होनेपर श्रीमोतीजीने यह बात बाबाको बतलायी।

* * * * *

एकांकी नाटक का अभिनय

बाबाने बाबूजीकी प्रेरणासे एक एकांकी नाटक लिखा। उस नाटकका नाम है 'देवर्षि नारदपर श्रीवृषभानुनन्दिनीकी कृपा'। नाटक लिखकर बाबाने पढ़नेके लिये बाबूजीको दे दिया और उसका अभिनय करनेके लिये अनुमति माँगी। नाटकको बाबूजी आद्यन्त पढ़ गये और पढ़कर बाबासे बोले – नाटक तो बहुत सुन्दर लिखा गया है, पर अभिनयकी दृष्टिसे इसमें दो बातें विचारणीय हैं। प्रथम तो यह कि इस नाटकको देखनेके अधिकारी कितने लोग हैं? यदि कुछ अधिकारी दर्शक देखनेके लिये इकट्ठे भी हो जायें तो दूसरी बात यह है कि इस नाटकका अभिनय करनेवाले उचित एवं योग्य पात्र कहाँ हैं? अपनी वाटिकामें जो लोग हैं और जिनका नाम आप बता रहे हैं, वे भला क्या

कथानककी गरिमाको अपने अभिनयमें उतार पायेंगे ?

बाबूजीके द्वारा ऐसा कहनेके बाद भी बाबाने किसी प्रकारसे उनसे अनुमति प्राप्त कर ली। अब अभिनयकी तैयारी होने लगी। जिन-जिन लोगोंको अभिनयके लिये चुना गया था, उन-उन लोगोंको पात्रके 'बोल' बतला दिये गये कि लोग याद कर लें। लोगोंको आवश्यक निर्देशन भी दे दिया गया, पर जब पूर्वाभ्यास (रिहर्सल) हुआ तो बाबाको बड़ी निराशा हुई, अत्यधिक निराशा हुई। कोई भी व्यक्ति उचित गम्भीरताका निर्वाह कर ही नहीं पा रहा था। निराश मनसे बाबा बाबूजीके पास गये और कहने लगे – अभिनयके बारेमें आपने ठीक ही कहा था। कोई भी व्यक्ति योग्य नहीं है। प्रसंगकी भाव-गरिमा वे लोग रख ही नहीं पा रहे हैं। यदि अभिनय हुआ तो मंचपर उचित वातावरण नहीं बन पायेगा। मैंने तो अब यही सोचा है कि नाटकके अभिनयके विचारको विसर्जित कर दिया जाय।

बाबाका ऐसा कथन सुनकर बाबूजीने तुरन्त कहा – नहीं, अब तो इस नाटकका अभिनय अवश्य होना चाहिये। घोषणा जो की जा चुकी है, अतः घोषणाके अनुरूप कार्य अवश्य होना चाहिये। अब रही बात मंचपर अभिनयकी। यह जैसा होगा, वैसा होगा। अभिनयमें सुन्दरता नहीं रहेगी, सही, पर अब तो घोषणाके अनुसार कार्य करना ही उत्तम बात होगी।

२६.९.१९५०, शरद पूर्णिमाकी रात्रिके समय नाटकका अभिनय हुआ। अभिनयके आरम्भ होनेके पूर्व मंचपर खड़े होकर बाबूजीने सभी दर्शकोंके समक्ष कहा – यह अभिनय कोई मनोरञ्जन नहीं है, कोई तमाशा नहीं है। यह तो दिव्य लीलाराज्यकी अति सुन्दर झाँकी है। जो लोग इसे मनोरञ्जन अथवा तमाशा अथवा विनोदकी वस्तु मान रहे हों, उनसे मेरी प्रार्थना है कि वे लोग चले जायें। आप विश्वास करें, यह अभिनय शुद्ध साधनाकी वस्तु है।

इस अभिनयके बारेमें चर्चा करते हुए बाबाने बतलाया था – श्रीपोद्दार महाराज जिस समय मंचपर खड़े होकर यह कह रहे थे, श्रीपोद्दार महाराजके स्थानपर ही श्रीराधाजी प्रकट हो गयीं। यह देखकर मैं तो अवाक् रह गया। अब मानो उस सारी मंच-स्थलीका नियन्त्रण तथा सारे अभिनयका निर्देशन भगवती श्रीराधाजीने अपने हाथमें ले लिया हो। वह सारा अभिनय इतना श्रेष्ठ, इतना सफल, इतना सुन्दर हुआ कि क्या कहा जाय। बादमें तो श्रीपोद्दार महाराजने मुझसे कहा कि इस प्रकारके प्रपञ्चमें अब न तो मैं पड़ूँ और न आप पड़ें।

अभिनय पूर्ण हो जानेके बाद श्रीमाधवजी (श्रीभुवनेश्वर प्रसादजी मिश्र 'माधव') बाबासे मिले। उन्होंने कहा – बाबा! नाटक बड़ा सुन्दर हुआ। सभीने मिलकर बड़ा सुन्दर अभिनय किया।

बाबाने उनसे कुछ कहा नहीं, पर वे मन-ही-मन कह रहे थे – क्या आप लोगोंने सुन्दर किया? आप और आपके मित्र क्या इतना सुन्दर कभी कर सकते थे? जब स्वयं श्रीराधारानीने सारा नियन्त्रण अपने हाथमें ले रखा था, तब भला नाटक सुन्दर क्यों नहीं होता? पल-पलपर और पद-पदपर वे प्रत्येक कार्यको प्रच्छन्न रूपसे सँभाल रही थीं।

ये तो बाबाके मनके भाव थे, परंतु प्रकट रूपसे तो बाबाने श्रीमाधवजीको साधुवाद ही दिया।

* * * * *

भगवती श्रीत्रिपुरसुंदरी उपासना

भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरी वृषभानुपुरनरेश सूर्यवंशीय श्रीवृषभानुजीकी कुलाधिष्ठात्री देवी हैं। शक्तिकी आदि-स्रोतस्विनी ये ही हैं। इन्हें ही आद्या-शक्ति कहते हैं। भगवती श्रीललिताम्बा, भगवती श्रीललितासुन्दरी आदि नाम इन्हींके हैं। महारानी कीर्तिदा एवं महाराज वृषभानुजीके भावपूर्ण पूजन-वन्दनसे प्रसन्न होकर भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीने माँ कार्तिदाकी ललित गोदमें श्रीराधाके रूपमें अवतार ग्रहण किया। ये ही भगवती श्रीराधा हैं। भगवती श्रीराधा और भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीमें सर्वथा अभिन्नता है। अपने महा-माधुर्यशाली स्वरूपके कारण जो सच्चिदानन्दमयी महाशक्ति भगवती श्रीराधाके रूपमें सुकीर्तित हैं, वे ही सर्वसमर्थ महाशक्ति अपने महा-ऐश्वर्यशाली स्वरूपके कारण भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीके रूपमें सुपूजित हैं। स्वरूप भेदसे एक ही महाशक्तिकी दो संज्ञाएँ हैं। मधुर भावकी दृष्टिसे जो श्रीराधाके रूपमें विख्यात हैं, वे ही ऐश्वर्य भावकी दृष्टिसे भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरी कहलाती हैं। भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरी ही व्रजमण्डलकी सम्पूर्ण लीलाओंकी सूत्रधारिणी हैं। इन्हें भगवती योगमाया भी कहते हैं और वे अघटन-घटना-पटीयसी

योगमाया ही सम्पूर्ण लीलाओंका संचालन, नियमन एवं संयमन करती हैं। शारदीय पूर्णिमाके दिन रास विलासके पूर्व इनका ही भगवान श्रीकृष्णने स्मरण किया था और इन भगवती योगमायाके उपाश्रित रहनेसे व्रजाङ्गनाओंके साथ शारदीय रास विहार सोल्लास सम्पन्न हो सका।

वैष्णवाचार्योंने प्रेमके सात स्तर बतलाये हैं। प्रगाढ़से प्रगाढ़तर होता हुआ उसका श्रेष्ठतम स्तर है महाभाव। इसी प्रकार श्रीवृषभानुजीके राजप्रासादके सात विशाल प्रवेश-द्वार हैं। सातवें प्रवेश-द्वारके बाद वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाका निज-सदन है। राजप्रासादके छठवें प्रवेश-द्वारमें भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीका भव्य मन्दिर है। उस मन्दिरमें 'पुण्ड्रेक्षुपाशांकुशपुष्पवाण' धारिणी चतुर्भुजा देवीकी स्वर्ण प्रतिमा प्रतिष्ठित है। दिव्याभामयी प्रतिमाका स्वर्ण अति विचित्र प्रकारका है। उस स्वर्णकी कान्ति इतनी अधिक दिव्य है कि उसके समक्ष इस लोककी उत्तमोत्तम स्वर्णकान्ति भी सर्वथा तुच्छ लगती है। भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीका वह स्वर्ण निर्मित श्रीविग्रह अत्यधिक देदीप्यमान है। इस मन्दिरमें नौ सदाशिव भगवतीकी सर्वदा अर्चना करते रहते हैं। ये सदाशिव भी प्रच्छन्न रूपमें श्रीकृष्ण ही हैं। राजप्रासादके सातवें द्वारमें प्रवेश पानेके लिये भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीकी प्रसन्नता नितान्त आवश्यक है। भगवतीकी प्रसन्नतासे ही वह सातवाँ द्वार खुलता है। जब भगवती प्रसन्न होती हैं तो वे अपने नेत्रोंसे संकेत करती हैं और संकेत पाकर वे महामहिमामय नौ सदाशिव प्रवेशार्थीकि लिये सातवाँ द्वार खोलते हैं। रस-साधनाके राज्यमें चरम सिद्धिकी उपलब्धिके लिये भगवतीकी अर्चना अपरिहार्य है। भगवतीकी कृपासे ही चरम सिद्धि मिल पाती है।

गीतावाटिकाका एक सुन्दर प्रसंग है। एक दिन प्रभातकी सुन्दर वेलामें भगवान श्रीकृष्णने ही बाबाको भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी उपासना करनेका निर्देश किया। उपासना करनेका निर्देश उन्होंने दे तो दिया, पर बाबाको यह नहीं बतलाया कि उपासनाकी विधि क्या है और किस मन्त्रसे उपासना करनी होगी।

गीतावाटिकामें परमैकान्तिक साधक ब्रह्मचारी श्रीरामचन्द्रनूजी रहते थे। वे भगवती त्रिपुरसुन्दरीके उपासक थे। गीतावाटिकाके पिछले भागमें

बनी हुई एक छोटी-सी कुटियाके अन्दर उन्होंने अपना सारा जीवन बिताया। वे आजीवन गीतावाटिकामें रहे और प्रतिदिन चौदह-पन्द्रह घंटेतक भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी अर्चना किया करते थे। उनकी अर्चनामें जप और पाठकी प्रधानता थी। ब्रह्मचारीजीने शक्ति-मन्त्रकी दीक्षा तो वाराणसीके किसी संन्यासीसे ली थी, परंतु वे काञ्चीकामकोटिके पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजमें गुरुभाव रखते थे।

बाबाने ब्रह्मचारीजीसे भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी उपासनाके सम्बन्धमें जिज्ञासा व्यक्त की। शक्ति-उपासनाका विषय बड़ा विशद और रहस्यपूर्ण है। ब्रह्मचारीजीने बाबाको जो बतलाया और जितना बतलाया, उससे बाबाको सन्तोष नहीं हुआ। फिर बाबाने अनेक शक्ति-उपासना सम्बन्धी ग्रन्थोंका अवलोकन एवं अध्ययन किया। इससे भी बात बनी नहीं। भगवान श्रीकृष्णके आदेशका पालन अवश्य करना है और शीघ्र करना है, इस प्रकारकी तत्परता और त्वरा बाबाके मनमें होनेके बाद भी उपासनाकी विधि निश्चित नहीं हो पा रही थी। इस विवशताकी स्थितिमें बाबाने श्रीललिता-सहस्रनाम-स्तोत्रके सहस्र नामोंके आधारपर हजार मन्त्रोंकी रचना स्वयं ही कर डाली।

भगवतीकी अर्चना हेतु बाबाने एक कोटि मन्त्र-जपका संकल्प किया। आजकल जहाँ बाबूजीकी समाधि है, इसीके पासमें बाबाकी पहलेवाली पुरानी कुटिया है। इसी कुटियाके अन्दर बाबा ऊनी आसनपर उत्तराभिमुख होकर बैठते थे। मन्त्र-जपके दैनिक नियमको पूर्ण करनेके लिये बाबाको प्रतिदिन चौदह-चौदह घंटेतक आसनपर बैठना पड़ता था। उपासनाके लिये प्रतिदिन कई सहस्र कमल-पुष्प चाहिये थे, पर कम-से-कम एक सहस्रकी नितान्त आवश्यकता थी। पुष्पोंके प्रबन्धका भार बाबूजीने श्रीरामसनेहीजीको सौंप रखा था। सहस्र पुष्पोंके प्रबन्धमें बड़ी कठिनाई आती थी। इस दुर्निवार कठिनाईके कारण बाबाको अपनी उपासना-विधिमें थोड़ा परिवर्तन करना पड़ा। कमल-पुष्पके स्थानपर अखण्ड चावलका प्रयोग करना पड़ा। बाबा अखण्ड चावलका प्रयोग करने लगे, किन्तु यह काम भी साधारण नहीं था। अर्चनाके लिये अखण्ड चावलोंको प्रतिदिन चुगकर इकट्ठा करना, यह भी अपने ढंगकी कठिनाईसे भरपूर

कार्य था। बाबाको अपनी उपासना-विधिमें फिर परिवर्तनका समावेश करना पड़ा। अब बाबाने चावलके स्थानपर लाल चन्दन और कुमकुमका प्रयोग करना आरम्भ कर दिया। लाल चन्दनको घिसकर तैयार करनेका तथा बिल्वपत्र-तुलसीदल-पुष्पादि पूजन सामग्रीको व्यवस्थित रख देनेका दायित्व भी श्रीरामसनेहीजीपर था, परंतु बाबा कुमकुमका निर्माण स्वयं किया करते थे। बाजारमें मिलनेवाली कुमकुममें बाबाको अशुद्धिकी गन्ध आती थी। लाल चन्दन और कुमकुमके प्रयोगसे सबसे बड़ी सुविधा यह हुई कि अधिक संख्यामें जप कर सकना सम्भव हो गया। कमल-पुष्प और अखण्ड चावलकी संख्या सीमित होनेके कारण जप भी सीमित हो पाता था। अब यह बाधा कुमकुमके प्रयोगसे समाप्त हो गयी।

शुभ कार्यमें बाधा आती ही है और कभी-कभी बड़े भीषण रूपमें आती है। सं. २००७ वि. (सन् १९५०-५१) की शीत ऋतुमें बाबाको बड़ी कठिन परिस्थितिका सामना करना पड़ गया। घटना २० जनवरी १९५१ की है। इन दिनों बाबा कुएँसे जल स्वयं ही निकाल कर स्नान किया करते थे। कुएँके जगतपर गड्ढे भी थे, जिनपर काई जमी हुई थी। वर्षाके कारण बड़ी फिसलन हो रही थी। दातुन करके बाबा स्नान करनेके लिये बढ़े ही थे कि उनकी खड़ाऊँ फिसल गयी और वे धड़ामसे भूमिपर गिर पड़े। गिरते ही बाबाको बड़ी चोट लगी और आँखोंके आगे अँधेरा छा गया। कुछ क्षणोंके लिये तो चेतना भी नहीं रही। परिचर्या हेतु श्रीरामसनेहीजी पास ही खड़े थे। उन्होंने बाबाको उठानेका प्रयास किया, पर वे उठा नहीं पाये। फिर रामसनेहीजीके पुकारनेपर कई लोग दौड़कर आ गये। बाबूजी भी तत्काल आ गये। बाबाके दाहिने कंधेमें भीषण वेदना थी। वेदनाको देखकर कोई मोचका और कोई गुम-चोटका संदेह कर रहा था। बाबाने बाबूजीसे कहा – वेदनाको देखते हुए ऐसा लग रहा है कि कहीं हड्डी टूट गयी है।

इस कष्टकी स्थितिमें भी बाबा प्रसन्न वदन थे। बाबाको उठाया गया तथा उनके वस्त्र बदले गये। गीतावाटिकाके समीपमें रेलवे अस्पताल है। बाबूजी बाबाको अस्पताल ले गये। वहाँ डाक्टर श्रीमाथुर साहबने एक्सरे लिया तो पता चला कि बाबाके दाहिने ओरके गलेकी हड्डी

(COLLAR BONE) टूट गयी है।

सारे संदेह दूर हो गये और सही स्थिति सामने आ गयी। बाबा बाबूजीके साथ अस्पतालसे गीतावाटिका चले आये। अब प्रश्न था चिकित्साका। लोगोंने चिकित्सा तथा औषधिके लिये अनुरोध किया तो बाबाको वह स्वीकार नहीं था। बाबाका बस, यही उत्तर था – यहाँ तो श्रीपोद्दार महाराज हैं और आप लोग हैं, अतः इतनी सारी दौड़-धूप हो रही है। यदि मैं घोर वनमें होता तो वहाँ कौन सँभालता?

रेलवे अस्पतालके डाक्टर श्रीमाथुर साहब बाबाको देखनेके लिये गीतावाटिका आये। उन्होंने भी बाबाको प्लास्टर बँधवा लेनेके लिये कहा, परंतु संन्यासी जीवनके नियमोंका आग्रह होनेके कारण बाबाने यह सुझाव स्वीकार ही नहीं किया। श्रीमाथुर साहब बड़े आस्तिक और साधु स्वभावके व्यक्ति थे। बाबाकी इस कठोर नियम-निष्ठासे वे बहुत अधिक प्रभावित हुए। बाबाने ज्यों ही प्लास्टर बँधवानेके लिये असम्मति व्यक्त की, त्यों ही श्रीमाथुर साहबने पूछा – क्या कम्बलकी पट्टीको काँखमें लगाकर गेरुए वस्त्रसे पट्टी बँधवानेमें भी आपको कोई आपत्ति है?

बाबाने कहा – इसमें तो कोई आपत्ति नहीं, परंतु मैं दिनमें शौचके बाद चार बार स्नान करता हूँ। प्रतिदिन वह स्नान तो होगा ही।

श्रीमाथुर साहबने समझ लिया कि नियमकी कठोरताके कारण बाबा स्नान अवश्य करेंगे, अतः विवशता भरे स्वरमें उन्होंने कहा – जब-जब आप स्नान करें, तब-तब पट्टी खोल लीजियेगा। बार-बार खोलनेसे हड्डीके जुड़नेमें समय अधिक लग जायेगा, परंतु कोई बात नहीं। आप स्नानके बाद पट्टी बँधवा लें। पूर्णतः नहीं बँधवानेकी अपेक्षा कम-से-कम इतना बँधवा लेना भी अवश्य लाभकर सिद्ध होगा।

बाबाकी अनुमति मिलनेपर श्रीमाथुर साहबने कम्बलके टुकड़ेका पैड काँखमें लगाकर गेरुए कपड़ेसे कसकर पट्टी बाँध दी। औषधि प्रयोगका तो प्रश्न ही नहीं था। इन दिनों डा.श्रीमाथुर साहबने बाबाकी बड़ी सेवा की। हड्डी टूटनेसे उत्पन्न होनेवाली वेदना कम नहीं होती। इस भीषण शारीरिक कष्टकी स्थितिमें भी भगवतीकी अर्चनाका क्रम खण्डित नहीं हुआ। अर्चनामें यह परमातिपरम कठिन विघ्न आया था, पर

बाबाकी निष्ठा-तत्परता-संलग्नता-दृढ़ता आदिके समक्ष उस विघ्नको भी अपना सिर झुका देना पड़ा। विघ्न आया, पर यह विघ्न अर्चनाके व्रतको प्रभावित नहीं कर सका। अर्चनाकी निरन्तरता सदा बनी रही। उस कष्टकी स्थितिमें भी अर्चनाका क्रम चल सके, एतदर्थ एक विशेष प्रकारकी काष्ठ-चौकी बनवायी गयी थी। इस चौकीपर बैठकर बाबा श्रद्धापूरित हृदयसे भगवतीकी अर्चना करते रहे। पहले सात दिन तो बड़ी पीड़ा रही, फिर वह पीड़ा क्रमशः कम होती चली गयी। हड्डीके जुड़ जानेके बाद तो स्थिति सामान्य हो गयी।

भगवतीकी अर्चनाका यह अखण्ड क्रम कितने मासतक निर्बाध रूपसे निरन्तर चलता रहा, यह निश्चित रूपसे कह सकना कठिन है, परंतु इस अर्चनावधिमें सम्भवतः चौबीस अथवा पच्चीस लाखके लगभग अर्चना सम्पन्न हो पायी होगी कि सं. २००८ वि. के वैशाख मासकी अक्षय तृतीया बुधवार (९ मई १९५१) के दिन भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीने बाबाको पावन दर्शन देकर कृतार्थ किया और अपना गुप्त मन्त्र बतलाया। यह मन्त्र-दान ही बाबाकी तीसरी भाव-दीक्षा है।

भगवती त्रिपुरसुन्दरीका अनुग्रह प्राप्त होनेके उपरान्त कोटि जपके संकल्पको पूर्ण करनेके स्थानपर बाबाने उनकी मानसिक अर्चना आरम्भ कर दी। बाबा द्वारा मानसिक पूजा प्रतिदिन तो होती ही थी, परंतु वे प्रत्येक शुक्रवारको विशेष रूपसे विस्तार पूर्वक किया करते थे। मानसिक पूजाका यह क्रम भविष्यमें सदा चलता ही रहा।

* * *

अनुमानतः सन् १९६० के आस-पासका एक प्रसंग है। बाबा बाबूजीके साथ स्वर्गाश्रममें गये हुए थे। बाबा गंगास्नानके लिये दोपहरके समय जाया करते थे। तटपर आकर बाबा पहले गंगाजीको प्रणाम करते और फिर अपनी मस्तीमें कुछ देरतक बैठे रहते। फिर गंगाजीके प्रवाहमें कटि-पर्यन्त प्रवेश करके बाबा लगभग आधा घंटा खड़े रहते। बाबाको याद नहीं रहा कि आज शुक्रवार है। यह विस्मृति साधारण प्रकारकी

सर्वथा नहीं थी। वृत्तिके अत्यधिक अन्तर्मुखी हो जानेके कारण बाबाको यह भान ही नहीं रहता था कि किस दिन कौन-सा वार अथवा कौन-सी तिथि है। अन्तर्मुखताकी प्रगाढ़ताके कारण कभी-कभी तो सूर्योदय-सूर्यास्ततकका भान नहीं होता था। भावकी प्रगाढ़ताके फलस्वरूप बाबाको यह स्मरण नहीं हुआ कि आज शुक्रवार है।

उसी समय एक पंजाबी मैया घाटपर खड़ी होकर कहने लगी – बेटा! आज शुक्रवार है। बेटा! आज शुक्रवार है। बेटा! आज शुक्रवार है।

बाबाने उसके कहनेपर ध्यान नहीं दिया, पर वह तो कहती ही चली जा रही थी। उसके लगातार कहनेसे बाबाकी वृत्ति थोड़ी बहिर्मुख हुई। उनका ध्यान घाटपर खड़ी पंजाबी मैयाकी ओर गया। बाबाको ऐसा लगा कि भगवती त्रिपुरसुन्दरी ही उसके अन्दर प्रवेश करके मुझे शुक्रवारवाली पूजाकी स्मृति दिला रही हैं। नहाते-नहाते बाबा उस मैयाकी ओर मुड़े और उसकी ओर मुँह करके खड़े हो गये। जलमें खड़े-खड़े ही बाबाने हाथ जोड़कर तथा मस्तक नवाकर उस पंजाबी मैयाको प्रणाम किया तथा मन-ही-मन कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहने लगे – मातः! मेरी भूलका सुधार तुम ही तो करोगी। यदि तुम नहीं बतलाती तो आज शुक्रवारवाली पूजा छूट जाती।

बाबाने उस पंजाबी मैयाको हाथ जोड़कर जब प्रणाम कर लिया, तब जाकर वह चुप हुई। उस पंजाबी मैयाकी चर्चा न जाने कितनी बार बाबा कृतज्ञता भरे शब्दोंमें किया करते थे।

* * *

बाबा कई बार कहा करते थे – परमवन्द्य जगद्गुरु श्रीआदि-शंकराचार्यजी महाराजने भी भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी उपासना की थी और उन्हें भी ऐसी ही परम सिद्धिकी उपलब्धि हुई थी।

ब्रह्माण्ड पुराणमें भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीके पूजन-पाठ-जप आदिका विस्तृत वर्णन दिया हुआ है। इसी पुराणमें भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीको शैलेन्द्रतनया, शिवप्रिया, उमा, कात्यायनी, ललिताम्बिका, गोविन्दरूपिणी, ललिता आदि नामोंसे भी अभिहित किया

गया है। अपने-अपने अनुभवोंके आधारपर विभिन्न भक्ति-आचार्योंकी अपनी-अपनी धारणाएँ हैं, किन्तु बाबाकी मान्यताके अनुसार व्रजभावके साधकके लिये भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीकी प्रसन्नता और अनुग्रह आवश्यक है। इनकी कृपा-दृष्टिसे ही रस-साधना सिद्ध होती है और साधकका वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाके मधुर-भावके रस-राज्यमें प्रवेश सम्भव हो पाता है।

* * *

भगवती श्रीत्रिपुरसुन्दरीजीकी अर्चनाके मध्य जो कठिन व्यवधान आया, उससे सम्बन्धित एक तथ्य की ओर किञ्चित् संकेत कर देना उचित रहेगा। भगवान श्रीकृष्णके निर्देशानुसार भगवती श्रीमन्महा-त्रिपुरसुन्दरीजीकी अर्चना करते समय बाबाके गलेकी हड्डी (COLLAR BONE) टूट गयी थी। अर्चनाके क्रममें यह बहुत बड़ा विघ्न था। बहुत दिनों बाद इस सम्बन्धमें चर्चा करते हुए बाबाने बतलाया – जब मेरी हँसलीकी हड्डी टूटी, तब उससे कुछ देर पूर्व मुझे अन्तर्जगतसे यह सूचना दी गयी कि अब समय हो गया है। मैंने इस संकेतसे यह अर्थ लगाया कि शायद अब शरीर न रहे। ऐसा सोच करके मैं प्रतीक्षा करने लगा कि अब आगे क्या होता है।

इसके कुछ देर पश्चात् अन्तर्जगतके एक दिव्य पुरुष प्रकट हुए। उनके शुभ्र दाढ़ी थी, वृद्धावस्था थी। उन दिव्य पुरुषने बतलाया कि तुमसे जुड़े हुए एक व्यक्तिके द्वारा कुछ समय पूर्व ही भीषण पाप घटित हुआ है। उसका भोग तुमको हाथों-हाथ भोगना है। मैं इसके लिये पूर्ण रूपसे तैयार हो गया कि देखें, किस रूपमें घटना घटित होती है। मैं इसी विचारमें डूबा हुआ स्नान करनेके लिये बढ़ा ही था कि उसी समय मेरी खड़ाऊँ फिसल गयी। फिसलते ही मैं धड़ामसे गिरा और मेरी हँसलीकी हड्डी टूट गयी।

बाबाके श्रीमुखसे इस वर्णनको सुनकर बड़ा विस्मय हो रहा था, परन्तु मनमें यह भाव भी उठ रहा था कि वे किस सीमातक निज जनोंका दायित्व स्वीकार करते हैं।

* * * * *

संकीर्तन के मध्य बालिका

राधा-नाम संकीर्तनका एक प्रसंग है। प्रत्येक रात्रिमें नाम-संकीर्तन हुआ करता था। संकीर्तन केवल 'राधा' नामका होता था। बाबा स्वयं संकीर्तनमें खड़े होते थे तथा नेतृत्व करते थे। बाबाके हाथमें घंटा रहा करता था, एक हाथमें घंटा और दूसरे हाथमें लकड़ीकी मोगरी। बाबा मोगरीसे घंटा बजाते जाते थे और चक्राकार घूमते जाते थे। बाबाके बोल चुकनेके बाद साथके सबलोग 'राधे राधे राधे राधे' कीर्तन करते जाते थे। कभी-कभी कीर्तन इतना अधिक जमता था कि सारी रात ही कीर्तनमें निकल जाया करती थी। कीर्तन करते समय जब बाबा 'राधा' नामको उच्च स्वरसे बोलते थे, तब प्रायः भावाधिक्यमें उनकी आँखें मुँद जाया करती थीं। ऐसी स्थितिमें तीन-चार व्यक्ति अपने हाथका घेरा बनाकर बाबाको घेरेके भीतर ले लिया करते थे। जैसे-जैसे बाबा घूमते, वैसे-वैसे ये लोग भी घूमते रहते थे। घेरेमें ले लेनेका प्रयोजन इतना ही था कि बाबा कहीं गिर न जायें, कहीं किसीसे टकरा न जायें अथवा कोई व्यक्ति बाबापर गिर न जाय।

एक दिन एक मैयाने एक विचित्र बात देखी। आठ वर्षकी एक बड़ी सुन्दर बालिका बाबाके पीछे-पीछे चल रही है तथा कीर्तन कर रही है। कीर्तनके भावावेशमें बाबा जिस प्रकार तथा जिस ओर अपनी गर्दन झुकाते अथवा लटकाते हैं, उसी प्रकार वह बालिका भी अपनी गर्दन झुकाती-लटकाती है। मैयाको एक बातकी बड़ी चिन्ता थी कि कहीं यह बालिका दबकर पिच न जाय। कीर्तन करनेवालोंकी भीड़ है। लोगोंको इतना होश ही नहीं कि उस बालिकाका ख्याल रख सकें। सभी लोग अपनी-अपनी मस्तीमें उच्च स्वरसे कीर्तन कर रहे हैं। उन्हें भला क्या ध्यान कि कौन आगे है, कौन पीछे है, कौन बगलमें है? बाबाका उत्साह और उल्लास सबमें संक्रमित होकर सबको कीर्तनमें बावला बना रहा है। उन उमंग भरे बावलोंकी झूमती हुई भीड़में कहीं यह बालिका दब न जाय! लोग तो कीर्तनमें मस्त हो रहे थे, पर वह मैया तो उस बालिकाकी चिन्तामें ही मरी जा रही थी। उसका यह भी साहस नहीं था कि आगे बढ़कर बालिकाकी रक्षाका कोई उपाय करे।

कहीं मुझसे बाबाका स्पर्श हो गया तो बाबाके लिये चौबीस घंटेका उपवास हो जायेगा और तब एक नयी भीषण समस्या खड़ी हो जायेगी। अस्तु, मैयाकी भावनाएँ तो विकल थीं, पर कोई उपाय दिखलायी नहीं दे रहा था। मैया अपनी मानसिक उथल-पुथलमें उलझी हुई थी, पर कीर्तनका प्रवाह बहता ही रहा। आज कीर्तनका विराम जल्दी हो गया। कीर्तनके विराम होते ही मैया उस बालिकाके पास दौड़ी, जिससे उसकी रक्षाकी व्यवस्था और उसकी थकावटका निवारण कर सके, पर वह बालिका अब कहाँ गयी? बहुत खोजा, पर वह बालिका मिली नहीं। अभी तो यहाँ थी और अभी-अभी कहाँ चली गयी? जल्दी ही वह मैया समझ गयी, वह कोई इस लोककी बालिका थोड़े ही थी। मैयाने अपना सौभाग्य माना कि राधा नाम संकीर्तनके मध्य उस दिव्य बालिकाका दर्शन मिला।

इस प्रकारके अद्‌भुत प्रसंग बाबाके जीवनमें कई बार घटित हुए हैं।

* * * * *

पुराणों का श्रवण

आदरणीय श्रीशिवनाथजी दूबे 'कल्याण' पत्रिकाके सम्पादकीय विभागमें कार्य किया करते थे। 'कल्याण' पत्रिकाका सम्पादकीय विभाग अब गीतावाटिकासे गीताप्रेस चला गया है। जबतक वह गीतावाटिकामें रहा, तबतक श्रीदूबेजी सम्पादकीय विभागके सदस्य रहे। श्रीदूबेजी वाराणसीसे गीतावाटिका सम्पादकीय विभागमें कार्य करनेके लिये आये थे। बाबूजी अपने पत्र उनसे लिखवाया करते थे।

श्रीदूबेजी प्रतिदिन बाबाको प्रणाम करने जाया करते थे। प्रणाम करके उनकी कुटियाके सामने एक चौकीपर वे बैठ जाया करते थे। एक दिन बाबाने उनसे पूछा – क्या आप मुझे श्रीरामचरितमानस सुना सकते हैं?

श्रीदूबेजीने कहा – आप सुनकर देखें कि मैं कैसा पढ़ता हूँ।

श्रीदूबेजीने बाबाको नौ दिनमें श्रीरामचरितमानसका सम्पूर्ण पाठ

सुनाया। उनके वाचनकी शैली तथा उच्चारणकी स्पष्टता बाबाको अच्छी लगी। बाबाने फिर पूछा – क्या आप धाराप्रवाह संस्कृत पढ़ सकते हैं?

श्रीदूबेजीने पुनः उसी रीतिसे उत्तर दिया – आप सुनकर देख लें कि मैं कैसा पढ़ता हूँ।

बाबाने कहा – श्रीरामचरितमानसके बाद आप मुझे अध्यात्म रामायण सुनाइये।

अब अध्यात्म रामायणके वाचन-श्रवणके क्रमका आरम्भ हो गया। प्रातःकाल शौच-स्नानादिसे निवृत्त होकर बाबा और श्रीदूबेजी, दोनों ही बैठ जाते। आजकल जिस बिल्व-वृक्षके नीचे प्रत्येक सोमवारको श्रीशिवार्चन हुआ करता है, वहीं बाँसकी एक छतरी बनी हुई थी, उसी छतरीके नीचे यह वाचन-श्रवण होता। उस बाँसकी छतरीके स्थानपर अब तो संगमरमर-सीमेंटकी उतनी ही बड़ी पक्की छतरी बन गयी है। यह छतरी इतनी बड़ी थी कि एक वक्ता और एक श्रोता बैठ जायें। यह बिल्व-वृक्ष बाबूजीकी समाधिके एकदम समीप है।

बाबाने श्रीदूबेजीसे सम्पूर्ण अध्यात्म रामायण सुनी। हिन्दीके समान संस्कृतका वाचन भी बाबाको अच्छा लगा। अध्यात्म रामायणके सम्पूर्ण होनेपर श्रीमद्भागवत महापुराणके वाचन-श्रवणका क्रम चल पड़ा। क्रमशः बात ऐसी बन गयी कि एक पुराणके पूर्ण होते ही दूसरे पुराणका वाचन-श्रवण आरम्भ हो जाता। पुराणोंके वाचन-श्रवणका यह क्रम, दो-तीन मासतककी बात कौन कहे, सन् १९५१ के बाद कुछ वर्षोंतक चलता रहा। क्रम-क्रमसे बाबाने सत्तरह (१७) पुराण सुन लिये। बस, अन्तिम एक मात्र गरुड पुराण सुनाना-सुनना शेष रह गया था। हिन्दू परिवारोंमें ऐसी परम्परा है कि गरुड पुराण सुनाया जाता है किसीकी मृत्यु होनेपर। अन्तिम गरुड पुराण सुनानेका क्रम जब आया तो श्रीदूबेजीने कहा – बाबा! यह पुराण मैं आपको कैसे सुनाऊँ? मैं तो गृहस्थाश्रमी हूँ। इसके सुनानेकी परम्परा तो और ही है। किसीके निधन होनेपर इसको सुना जाता है।

बाबाने कहा – आप गृहस्थाश्रमी हैं, पर मैं तो चतुर्थाश्रमी संन्यासी हूँ। लोकाचारका यह नियम मुझपर लागू नहीं होता।

इसके बाद भी किसी अशुभकी आशंकासे श्रीदूबेजीका मन गरुड पुराण सुनानेके लिये तैयार नहीं हुआ। श्रीदूबेजीके मनके संकोचको देखकर

बाबाने सम्पादकीय विभागके पुस्तकालयसे खुले पृष्ठोंवाला गरुड पुराण मँगवाकर स्वयं पूरा पढ़ लिया। स्वयं ही पढ़ा और स्वयं ही सुना। इस प्रकार उस बिल्व-वृक्षके नीचे बाबाने अट्ठारहों पुराणोंको सुना। इस वृक्षके बिल्व फल बड़े ही सुमधुर होते हैं। मधुरताके अतिरिक्त एक बात और, किसी-किसी बिल्व फलमें बीज नहीं होते, जो स्वयंमें एक विचित्रता है।

बाबाने बिल्व-वृक्षके नीचे अट्ठारह पुराण सुने, पर सबसे आश्चर्यकी बात है श्रीशिव-पुराणके समयकी। नौ दिन और नौ रात्रितक न तो बाबा सोये और न श्रीदूबेजी सोये। व्यास-पीठके आसनसे श्रीदूबेजी और श्रद्धालु-श्रोताके आसनसे बाबा केवल शौच-स्नान तथा आहारादिके लिये उठते थे, अन्यथा नौ दिन और नौ राततक लगातार अखण्ड रूपसे वाचन-श्रवणका क्रम चलता रहा।

* * *

एक बार श्रीदूबेजीसे बात हो रही थी तो उन्होंने बताया – नौ दिन और नौ राततक लगातार बिना सोये और बिना विश्राम किये अखण्ड रूपसे पाठ करना और सुनाना, इसके बारेमें जब मैं आज सोचता हूँ तो परम विस्मय होता है। मैं तो एक साधारण स्तरका गृहस्थ हूँ। इस प्रकारका कार्य मेरे द्वारा हो सकना, मेरी कल्पना और मेरी क्षमताके सर्वथा बाहरकी बात है। न जाने कैसे एक सर्वथा अशक्य बात पूर्णतः सम्भव हो गयी। मेरे लिये आज भी यह रहस्य ही है कि किस अचिन्त्य शक्तिने मुझे माध्यम बनाकर इस प्रकार करवा लिया। कुछ भी हो, उन नौ दिनोंमें सारा श्रीशिवपुराण सम्पूर्ण हो गया।

बातचीतके मध्य मैंने श्रीदूबेजीसे पूछा – ऐसा सुना है कि आपके गुरुदेवने बाबाके हाथ आपको सौंपा है। यह कैसे हुआ?

श्रीदूबेजीने मेरी जिज्ञासाका समाधान करते हुए जो बतलाया, वह सब संत-चरणाश्रयका अत्यधिक परिपोषक है। श्रीदूबेजीके गुरुदेव महाराजका नाम था पूज्य श्रीनन्दकिशोरजी मुखोपाध्याय। श्रीमुखोपाध्यायजी सुयोग्य शिष्य थे परम पूज्य श्रीशिवराम किंकर योगत्रयानन्दजीके। (इन दोनों संतोंका संक्षिप्त जीवन-वृत्त 'कल्याण'

पत्रिकाके भक्त-चरित-विशेषांकमें छपा है।) श्रीमुखोपाध्यायजी काशीमें वास करते थे। साथमें माताजी भी रहती थीं। आजन्म ब्रह्मचारी रहते हुए श्रीमुखोपाध्यायजीने भारतीय ऋषियोंका-सा जीवन व्यतीत किया। शास्त्र-निष्ठा, तपोमय जीवन और सदाचारकी वे साक्षात् मूर्ति थे। श्रीदूबेजी अपने बचपनमें श्रीमुखोपाध्यायजीके पास ही रहते थे। श्रीदूबेजीपर उनका बड़ा वात्सल्य था।

श्रीदूबेजी बाबाको जब स्कन्द पुराण अथवा वाराह पुराण सुना रहे थे, तबकी बात है। 'कल्याण' पत्रिकाका भक्त-चरित विशेषांक सन् १९५२ के जनवरीमें छपा था, इससे पहलेकी यह बात है। पुराण खोलकर श्रीदूबेजीने ज्यों ही एक श्लोक पढ़ना आरम्भ किया, तभी बाबाने कहा – राधा राधा।

श्रीदूबेजी आँख उठाकर बाबाकी ओर देखने लगे। इन दिनों बाबा मौन रहा करते थे। यदि कुछ कहना होता था तो इशारेसे कहते थे अथवा अपनी हथेलीपर अँगुलीसे लिखकर बता दिया करते थे। बाबाने इशारेसे कहा – पुराणकी पोथी बन्द कर दीजिये।

बाबाका ऐसा संकेत मिलते ही श्रीदूबेजीने कहा – अभी तो एक श्लोकका वाचन भी नहीं हुआ। एक श्लोकके पूरा होनेके पहले ही आपने पोथी बन्द कर देनेके लिये इशारा कर दिया।

श्रीदूबेजीके ऐसा कहनेके बाद भी बाबाने पुनः इशारेसे कहा – आप पोथीको बन्द कर दें।

श्रीदूबेजीने नत-मस्तक होकर कहा – जैसी आपकी आज्ञा। सुनना तो आपको है।

श्रीदूबेजीने पुराणकी पोथी बन्द कर दी। बाबाके संकेतके अनुसार श्रीदूबेजी चुपचाप बैठ गये। थोड़ी देर बाद बाबा अपनी हथेलीपर लिखकर बातचीत करने लगे। बाबाने श्रीदूबेजीसे पूछा – क्या आपके श्रीगुरुजी गौर वर्णके थे?

श्रीदूबेजी – जी हाँ।

बाबा – क्या उनके शीशपर ऐसे और इतने लम्बे-लम्बे केश थे?

श्रीदूबेजी – आप यथार्थ कह रहे हैं।

बाबा – क्या वे अपने शरीरपर इस रीतिसे वस्त्र धारण करते थे?

श्रीदूबेजी – आप जैसा बता रहे हैं, वे सर्वथा वैसे ही वस्त्र पहनते थे।

बाबा – क्या आपका नाम इस प्रकारसे बोलकर पुकारा करते थे?

श्रीदूबेजी – आप तो इस ढंगसे बोल रहे हैं, मानो वे ही बोल रहे हों। आपने तो उनके बोलनेकी शैलीकी नकल भी ज्यों-की-त्यों कर ली।

श्रीदूबेजीको बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि बाबाको यह सब कैसे पता चल गया। बाबाने तो कभी उनके दर्शन किये नहीं थे, फिर भी बाबा द्वारा बतलायी गयी सभी बातें एकदम सही हैं। इधर श्रीदूबेजी विस्मित हो रहे थे, उधर बाबाका प्रत्येक प्रश्न उस विस्मयको और भी बढ़ाता चला जा रहा था।

अब सर्वान्तमें बाबाने कहा – आज आपके गुरुदेव मेरे पास आये थे।

बाबाके ऐसा कहते ही श्रीदूबेजीका कौतूहल बहुत बढ़ गया। उत्सुकतापूर्वक बाबाकी ओर देखते हुए श्रीदूबेने पूछा – वे कब आये थे और आपसे क्या कह रहे थे?

बाबाने कहा – वे आज प्रातःकाल अपने सूक्ष्म शरीरसे आये थे। वे बड़े ही दिव्यात्मा थे। उन्होंने बतलाया कि मैं अपना पाञ्चभौतिक स्थूल कलेवर काशीमें परित्याग करके अब और भी उच्चतर लोकोंको जा रहा हूँ। इस शिवनाथके प्रति मेरा बड़ा वात्सल्य है। इस वात्सल्यके कारण इसकी स्मृति बनी रहती है। यदि आप इसका दायित्व स्वीकार कर लें तो मैं निश्चिन्त हो जाऊँ। आप महात्मा हैं। आप द्वारा भार सँभाल लिये जानेपर मैं सर्वथा चिन्ता-विमुक्त हो जाऊँगा। आपके श्रीगुरुजीद्वारा ऐसा कहे जानेपर मैंने निवेदन किया कि जबतक मेरा शरीर है, तबतक मैं श्रीशिवनाथकी सँभाल हर प्रकारसे करूँगा। मेरे द्वारा आश्वासन पाकर वे प्रसन्न हो गये और फिर वे चले गये।

श्रीगुरुदेवकी इस वत्सलताको देखकर श्रीदूबेजीका हृदय भर

आया और बाबासे गद्‌गद् वाणीमें कहने लगे – गुरुदेवके इस वात्सल्यको पाकर मैं धन्य हो गया। जबतक जीवित रहे, तबतक तो सँभाला ही, शरीरका परित्याग करनेके बाद भी उन्हें सँभालकी चिन्ता बनी रही।

पूज्य श्रीमुखोपाध्यायजीको जो आश्वासन बाबाने दिया था, उसका निर्वाह करनेमें बाबाके सामने कम बाधाएँ नहीं आयीं। बाबाको बहुत परेशानियाँ उठानी पड़ीं। बाबाकी तत्परताके कारण कभी-कभी साथके लोग भी झुँझला उठते थे, पर इन लोगोंको क्या पता कि बाबाने किसी उच्च-लोक-गत संतको क्या वचन दे रखा है। अनेक बाधाओंके बाद भी अपने प्रदत्त आश्वासनको निभानेमें बाबाकी जैसी अ-शिथिल तत्परता और जैसा अ-मन्द उत्साह सदैव रहा, उसकी स्मृति आज भी अन्तरको विस्मयान्वित बना देती है।

* * * * *

साँप से निर्भीकता

बाबा गीतावाटिकाकी कुटियामें चौकीपर पद्मासन लगाये ध्यानस्थ बैठे हुए थे। रेंगते-घूमते हुए एक साँप आया और धीरे-धीरे चौकीपर चढ़कर बाबाकी जाँघ और हथेलीपर रेंगने लगा। ठण्डकी अनुभूति होनेपर उन्होंने अपने नेत्र खोले और उन्होंने देखा कि शरीरपर एक विषधर रेंग रहा है। देखकर भी वे पूर्ववत् ध्यानस्थ हो गये। इसी बीच श्रीरामसनेहीजी कुटियामें आये और उनकी दृष्टि साँपकर पड़ी तो घबड़ा करके बाबाको सावधान करते हुए कहने लगे – बाबा! साँप।

उनकी आवाज सुनकर बाबाने उनको शान्त रहनेका संकेत देनेके लिये अपने मुँहपर तर्जनी अँगुली रख ली और इशारेसे चुपचाप चले जानेके लिये कह दिया। बाबाका चित्त शान्त था, पर उनका नहीं। वे तुरन्त बाबूजीके पास गये और बाबूजी दौड़कर कुटियामें आये। तबतक साँप चौकीसे उतर आया था। बाबूजीने बाबासे कहा – बाबा! आप मेरी प्रार्थना या आदेश, जो समझिये, मानकर बाहर चले आइये।

बाबा चुपचाप बाहर चले आये। तबतक कई व्यक्ति वहाँ इकट्ठे हो गये थे। बाबाके आदेशानुसार वह साँप मारा नहीं गया, बल्कि लकड़ीके बड़े कैंचेसे पकड़कर बाहर बहुत दूर छोड़ दिया गया।

अगली घटना उन दिनोंकी है, जब बाबाने पण्डित श्रीशिवनाथजी दुबेसे सत्तरहों पुराण सुने थे। श्रीदुबेजी सबेरे नौ-दस बजे पुराण सुनानेके लिये आया करते थे। उनके आनेका समय हो चुका था। उसी समय एक बहुत बड़ा गेहुअन साँप रेंगते-रेंगते आ निकला। बाबा खड़े रहे और मन-ही-मन उससे कहते रहे – देखिये महाराज, मुझसे तो आपकी कोई हानि नहीं होगी, किन्तु श्रीशिवनाथ दुबे आ रहे हैं। वे साँपसे बहुत डरते हैं। यदि वे आ गये और आपको देखकर शोर मचाना शुरू कर दिया तो फिर कई लोग आ जायेंगे और वे सब मिलकर आपकी जीवन-लीला समाप्त कर दे सकते हैं, अतः आप चले जाइये और छिप जाइये।

बाबा उनसे चुपचाप निवेदन कर रहे थे। सचमुच उस साँपने वह प्रार्थना सुन ली और वे एक झाड़ीमें चले गये। पर हुआ क्या? वे झाड़ीमें चले तो गये, परन्तु उनकी पूँछका बहुत बड़ा भाग बाहर दिखलायी दे रहा था। बाबाको संदेह था कि लोग उसे देखकर कहीं साँपको मार न दें। बाबा चाहते थे कि वे झाड़ीमें पूर्णतः छिप जायें, अतः उन्होंने हाथमें एक लकड़ी लेकर उसके पूँछको छुला दिया, जिससे वे अपनी पूँछको झाड़ीके भीतर कर लें। अन्दर करना तो दूर रहा, वे बाहर निकल आये। पूर्णतः बाहर निकलकर और एक हाथकी दूरीपर स्थित होकर उसने अपने फनको काफी ऊँचा कर लिया और काफी भयंकर फुफकार छोड़ते हुए बाबाकी ओर आक्रमण किया। बाबा भी अपने ही ढंगके थे। पूर्ण निर्भीकताके साथ वे वहीं खड़े रहे। ज्यों-के-त्यों खड़े रहकर उन्होंने फिर मन-ही-मन सर्पसे कहा –मैं तो आपकी रक्षाका उपाय कर रहा हूँ और आप मुझ ही पर क्रुद्ध हो रहे हैं।

इधर बाबा मन-ही-मन साँपसे निवेदन कर रहे थे और उधर साँपने दो-तीन बार फन फेंककर फुफकारते हुए बाबापर आक्रमण किया। बाबा फिर भी ज्यों-के-त्यों खड़े रहे और मन-ही-मन उनसे कहा – यदि आप मेरी जीवन-लीला समाप्त करनेके लिये ही आये हैं तो मैं आपका स्वागत करता हूँ।

इसके बाद वह साँप अपने आप एक ओर चला गया और फिर अदृश्य हो गया। बाबाके जीवनमें ऐसी और भी कई घटनाएँ हैं, पर प्रत्येक बार सर्पसे वे सर्वथा निर्भीक बने रहे। बाबाके लिये तो सर्प भगवत्स्वरूप ही था। क्या पशु और क्या पक्षी, क्या देव और क्या मानव,

क्या जड़ और क्या चेतन, इन सभीके प्रति बाबाका भगवद्भाव बड़ा सुदृढ़ था, पर बाबा ऐसा भी कहा करते थे – मेरी देखा-देखी नहीं करनी चाहिये। यदि साँपको देखकर तनिक भी भय लगता हो तो आत्मरक्षाका उपाय अवश्य करना चाहिये। जीवनको जोखिममें डालकर उसके सामने जानेका साहस नहीं करना चाहिये। कुछ भी हो, यह तो सत्य ही है कि साँपके रूपमें भगवान ही हैं।

* * * * *

एक असफल योजना

यह योजना थी बाबाकी भेंट जन्मदात्री माँसे एक बार करवा देनेकी। जन्मदात्री माँका बाबाके प्रति बड़ा वात्सल्य था, सीमातीत ममत्व था। बाबा तो संन्यास ले चुके थे और वह माँ अपने संन्यासी बेटेको एक बार फिरसे देखनेके लिये बड़ी व्याकुल थी। उसकी आँखें तरस रही थीं। संन्यास-धर्मके अनुसार संन्यासी एक बार घर जाता है तथा जाकर माता-पिताको प्रणाम करता है। इसके अनुसार बाबा तो घर जाकर माँके श्रीचरणोंका दर्शन कर चुके थे। इसके अतिरिक्त बाबा एक बार और गये थे, तब श्रीमद्भागवतमहापुराणकी पावन सप्ताह-कथाका आयोजन भी हुआ था बाबाकी प्रेरणासे। इस आयोजनका हेतु था वह आश्वासन, जो कभी बाबाने अपनी माँको दिया था और तब घरपर वह सप्ताह-कथा कही थी पूज्य पं.श्रीदेवदत्तजी मिश्रने, परंतु उस बातको भी तो कई वर्ष व्यतीत हो गये। माँके मनकी बेकलीकी सीमा नहीं थी। फिरसे अपने बेटेको देखनेके लिये माँका मन बड़ा अकुला रहा था। 'करति बिलाप मनहिं मन भारी'। हृदयमें हाहाकार मचा था कि एक बार मेरा बेटा मेरे पास आ जाये। जिसे नौ मासतक गर्भमें रखा, जिसे नौ वर्षोंतक अपने स्तनोंका दूध पिलाया और जिसे अपने आँचलकी छायामें पाल-पोसकर बड़ा किया, अपने उस बेटेकी यादमें रात-दिन बिसूरती रहती। माँकी दशा यह थी, 'जनु बिनु पंख बिहग अकुलाही'। वह बार-बार यही सोचती कि एक बार अपने बेटेके शरीरपर मैं हाथ फेर लूँगी तो मेरा कलेजा ठण्डा हो जायेगा। जब बाबाका जन्म हुआ था, तब माँको प्रसव-वेदना बहुत कम भोगनी पड़ी थी। बाबाने अपनी आयुके नौ वर्षोंतक माँके स्तनोंका पान

किया था। पाठशालासे पढ़कर आनेके बाद पहला कार्य होता था स्तन-पान करना। माँ कितना ही मना करे, पर पुत्र मानता था क्या? बाल-हठके सामने माँको झुकना ही पड़ता था। ऐसे प्यारे बेटेके लिये माँका हृदय छटपटाये तो क्या आश्चर्य? न दिनमें चैन, न रातमें चैन। अमिलनके दुःखसे उसका अन्तर अत्यधिक संतप्त था।

माँके हृदयकी छटपटाहटने परिवारके अन्य सदस्योंके हृदयमें भी बड़ी व्यथा उत्पन्न कर दी। वे लोग गीतावाटिका आकर बाबूजीसे मिले। उन लोगोंने माँकी मनस्थितिका जैसा चित्रण किया, उससे बाबूजीका अन्तर भी द्रवित हो उठा। सभी चाहते थे कि किसी प्रकार माँके मनको परितोष मिले, पर बाबाके नियमोंकी कठोरताको देखते हुए इस समस्याका कोई समाधान सूझ नहीं रहा था। कोई उपाय उभरकर सामने नहीं आ रहा था, जिसे क्रियान्वित किया जा सके। बहुत विचार करनेके बाद एक बात ध्यानमें आयी। बाबाकी माँ तो गीतावाटिका नहीं आ सकती। यदि वह गीतावाटिका आयेगी तो बाबा तुरंत बाबूजीका साथ छोड़कर गीतावाटिकासे वृन्दावनधामके लिये चल देंगे, हमेशाके लिये चले जायेंगे। अतः एक दूसरे उपायका आश्रय आवश्यक हो गया। बाबाकी माँ बाबूजीसे मिलनेके बहाने भी गीतावाटिका नहीं आ सकती, पर बाबूजी तो बाबाकी माँके पास मिलनेके बहानेसे जा ही सकते हैं। इसी चिन्तनके आधारपर एक नवीन योजना बनायी गयी।

बिहारके डेहरी-आन-सोनसे पश्चिम बंगालके दिनाजपुरतक कैनाल-रोड है। इसी लम्बे मार्गपर गया जिलेमें अरवल नामक बस्ती है। अरवलसे तीन मील पूर्वकी ओर बाबाका गाँव फखरपुर है। बाबाको लेकर बाबूजी कारसे अरवल आ जायें और माँ भी फखरपुरसे अरवल आ जाये। यहीं माँकी बाबासे भेंट करा दी जायेगी। यहाँ माँ अपने हाथसे बाबाको कुछ खिला देगी। यदि यह योजना सफल हो गयी तो बाबाके अनेक नियमोंका निर्वाह भी हो जायेगा और माँकी अभिलाषा भी पूर्ण हो जायेगी। यह सारी योजना बाबाको बिना बताये बनायी गयी थी। यदि बाबाको तनिक भी गंध मिल जाती तो सारी योजनापर पानी फिर जाता। इस गुप्त योजनाके अनुसार गोरखपुरसे प्रस्थान करनेकी तिथि भी निश्चित हो गयी। बाबूजीने बाबाके पास संदेश भिजवा दिया – आज रातको एक स्थानपर ट्रेनसे चलना है, अतः आप चलनेके लिये तैयार रहें।

इस संदेशके मिलनेपर बाबा अपने सारे कृत्योंसे निवृत्त होकर संध्याके

समय कुटियाके बाहर आकर बेलके वृक्षके नीचे बैठ गये। बाबा तो जानेकी पूर्ण तैयारीसे बैठे थे। उसी समय अचिन्त्य भगवदीय विधानसे बाबाके संन्यास-धर्मकी रक्षाका संयोग घटित हो गया। भगवदीय प्रेरणासे एक व्यक्तिने आकर बाबाको बताया – बाबा! एक योजना बनायी गयी है, जिसकी जानकारी आपको नहीं है। आजकी यात्राका उद्देश्य है आपको आपके गाँवके पास ले जाना और आपको आपकी माँसे मिलाना। लोग कुछ भी आपको बतायें, पर असली बात यही है।

उस व्यक्तिने सारी योजनाका सही विवरण बाबाके सामने रख दिया। उस व्यक्तिको विदा करके बाबाने पूज्या माँको बुलाया तथा उनसे बाबा कहने लगे – तुम सब लोग जा रहे हो मेरे पूर्वाश्रमकी माताजीको सुख पहुँचानेके लिये, पर तुम मान लो कि इससे उसको दुःख हो जायेगा तथा भविष्यमें उसका अमंगल होगा।

बाबाने माँको सच्ची बात कही थी और उस सच्चाईका असर माँके हृदयपर हुआ। माँ बाबाके पाससे उठकर बाबूजीके पास गयी। उसने सारी बात बाबूजीको बता दी। बातचीतका परिणाम सुन्दर निकला। यात्राका विचार छोड़ दिया गया और फिर वह योजना भी सर्वथा विसर्जित हो गयी।

जो सोचा गया था, वह सब ढह गया, सर्वथा बिखर गया। बाबाके जानेका ढंग नहीं बैठ पाया और सभी अपने मनको मसोस कर रह गये। जितने भी निकटवर्ती जन थे, उन सबका संवेदनशील हृदय माँकी व्यथाको याद कर-करके व्यथित हो रहा था। मेरे परमादरणीय मित्र श्रीशिवनाथजी दूबेने एक दिन अवसर पाकर बाबासे कहा – आप नारी मात्रमें भगवती श्रीराधाका दर्शन करते हैं, फिर अपनी जन्मदात्री जननीसे एक बार मिल लेनेमें कौन-सा अपराध बन जाता है? आपसे मिलनेके लिये वे बड़ी ही व्याकुल हैं। दया करके आप मेरे निवेदनपर कुछ विचार करें।

अत्यन्त गम्भीर होकर बाबाने उत्तर दिया – दूबेजी! मुझे इस गैरिक वस्त्रकी मर्यादाकी रक्षा करने दीजिये। आप मेरी बातपर विश्वास कर सकें तो उत्तम ही होगा। आप सत्य मान लें कि अपने जीवनके अन्तिम समयमें मेरी माँ निश्चय ही ऐसा अनुभव करेगी कि मैं उसके समीप हूँ.....। जिन श्रीराधारानीपर मैंने अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया है, वे इतनी निष्ठुर नहीं हैं कि इस शरीरको जन्म देनेवाली मेरी माँको निराशा प्रदान करेंगी। दूबेजी! एक बात और है। जिस लाभपर दृष्टि टिकाये हुए आप यह

अनुरोध कर रहे हैं, वह लाभ सामयिक, तात्कालिक और क्षणिक है, परंतु मैं अपनी जन्मदात्री माँके हितमें जिस लाभका चिन्तन कर रहा हूँ, वह लाभ चिरन्तन, स्थायी, निरवधि होगा और जीवनके उस पार भी मेरी माँके लिये हितकारी होगा।

अब श्रीदूबेजी बाबाके समक्ष नतमस्तक थे।

* * * * *

आदेशानुवर्तन में प्रमाद

कृष्णजी बाबूजी एवं बाबाकी सेवा तत्परता पूर्वक किया ही करते थे, पर उनसे एक बार एक चूक हो गयी। सन् १९५२ के १८ नवम्बरकी बात है। १७ नवम्बरको मार्गशीर्ष मासकी अमावस्या थी और बाबाको कोई विशिष्ट पूजन-अर्चन करना था। इसके लिये भूमिको गायके गोबरसे लीप दिया जाना जरूरी था, पर यह काम उचित ढंगसे नहीं हो पाया। कार्यके प्रति जो लापरवाही हुई, इससे बाबाको बड़ा कष्ट हुआ। सेवा-कार्यमें जो त्रुटि हुई, उसकी ओर संकेत करनेके लिये और भविष्यमें ऐसी भूलकी आवृत्ति न हो, एतदर्थ सावधान करनेके लिये बाबाने भाई कृष्णजीको एक लिखित संदेश दिया। यह संदेश तो पर्याप्त विस्तृत है। उसका मुख्य अंश नीचे दिया जा रहा है –

देखो भैया,

मैंने रामसनेहीको कहा कि कृष्णको कहकर जगह लीपनेकी व्यवस्था करवा दो, मेरी खास पूजा है। रामसनेही तुम्हें कहकर चले गये। तुमने बद्री (माली) को कह दिया। बद्रीने श्रीपत (माली) को कह दिया। अब श्रीपतके पास कोई उपयुक्त व्यक्ति होता, तब तो वह भी उसे कह देता कि लीप दो, पर बाध्य होकर उसे ही लीपना पड़ा, पर आखिर वह उतनी जगह लीप ही नहीं सका, जितनी मुझे चाहिये थी। इस प्रकार हुकुमके क्रममें सब व्यवस्था ही गड़बड़ हो गयी। मेरी पूजा न हो सकी। अब देखो, यदि मैं सौ वर्ष भी और जीवित रहूँ, फिर भी विक्रमी संवत् २००९ की मार्गशीर्षकी अमावस्याका ब्राह्म मुहूर्त तो मेरे जीवनमें नहीं आयेगा। कलकी संध्या, कलका निशीथ एवं अभी-अभी चार घड़ी पूर्व व्यतीत हुई ऊषाका प्रकाश मैं फिर इस जीवनमें नहीं देख सकूँगा। पट्टीपर अंकित करते हुए इन

अक्षरोंके मूर्त होनेमें जो क्षण, लव, निमेष आदि व्यतीत हुए और होते जा रहे हैं, वे भी अतीतके गर्भमें समा गये। उनके दर्शन भी अब मुझे नहीं होंगे। उन क्षण, लव, निमेषका उपयोग मैं नहीं कर सकता। मेरे लिये अनन्त कालतक यह असम्भव हो गया कि मैं उन क्षणोंका उपयोग कर सकूँ। इस जीवनमें ही नहीं, कभी भी नहीं कर सकता। श्वेत वाराहकल्पके बाद भी सृष्टिका निर्माण होनेपर मैं चाहूँ कि अतीतके उस लव मात्र समयका उपयोग मैं कर लूँ, फिर भी सम्भव नहीं, क्यों कि उस समय भी अग्रिम कल्पकी ओर ही कालका प्रवाह रहेगा। अतीतकी ओर कालकी धारा आती ही नहीं। सारांश यह है कि प्रत्येक क्षण ऐसे अनमोल हैं कि वास्तवमें शब्दोंमें उनकी गम्भीरता व्यक्त नहीं की जा सकती। एक मात्र श्रीकृष्णचन्द्र ही ऐसे हैं, प्रभु ही ऐसे हैं, जहाँ कालका भी यह प्रभेद नहीं है। वहाँ उनके समीप अतीत नहीं, भविष्य नहीं, बस, सब कुछ वर्तमान ही वर्तमान है। बस, केवल उनके लिये ही समयकी अनमोलता नहीं। अन्यथा हम सभीको प्रत्येक क्षण, लव, निमेषतकका भी सदुपयोग कर लेना है, क्यों कि अतीतके गर्भमें समाये हुए कालको हम कभी अनन्त कालतक निकाल सकेंगे ही नहीं।

जो हो, इतना मैं इसीलिये कह रहा हूँ कि कभी कोई काम मैं सौंपूँ तो यथासाध्य उसे पूरी तत्परतासे करवा दो और करवाकर मुझे सूचना दिलवा दो, जिससे मैं देख तो लूँ कि वह भली प्रकार हुआ या नहीं। समय रहते यदि मुझे सूचना मिल जाय तो मैं स्वयं चेष्टा करके उसकी त्रुटि पूरी करवा लूँ, पर मुझे सूचना तब मिलती है, जब उसके पूरा करनेका समय भी समाप्त हो जाता है।

यह युग अब प्रेमके ह्रासका है। सेवा-भावना समाप्तप्राय हो चुकी है। तुम चाहोगे कि हुकुमसे काम हो जाय तो नहीं होगा और यदि होगा तो उसमें 'तम' के परमाणु भरे रहेंगे। हुकुमके द्वारा तुम मेरे लिये पूजाकी जगह प्रस्तुत नहीं करवा सकोगे। प्रेमसे या अर्थके मूल्यमें ही यह बात सम्भव है। बिना प्रेम या अर्थका उपयोग किये ही यदि तुम चाहोगे कि 'स्वामीजीकी पूजा सतोगुणी हो' तो वह केवल तुम्हारा भ्रम मात्र होगा। अतः भविष्यमें प्रत्येक पूर्णिमा एवं अमावस्याको किसी मजदूरके द्वारा अथवा किसीके द्वारा नियम पूर्वक पूरी जगह गोबरसे लिपवा दो। मैं

फिर गंगाजलसे उसका संस्कार कर लिया करूँगा, पर यह काम करानेसे पूर्व ही उन्हें कुछ खानेके लिये दे दो, अपने पाससे या गोस्वामीजीसे लेकर या भाईजीके खातेसे ही। जब भाईजी मेरे लिये इतना खर्च करते हैं तो महीनेमें एक रुपया पूजा की जगह लीपनेके लिये भी दे सकते हैं। और भइया! मैं तो तुम सबका ही हूँ। यदि भाईजी मेरे शरीरकी भूखके लिये रोटी देते हैं तो तुम लोग मेरे मनकी भूख इस अनुष्ठान-पूजाकी वासनाकी तृप्तिके लिये क्या इतनी-सी तत्परतासे नहीं कर सकते? तो भइया! आगेसे इतना ही कर दो कि मेरे कामोंको तत्परतासे करवा दिया करो और जो भी कराओ, उसे 'तमोगुणी' हो जानेसे बचाकर करवाओ, क्यों कि मुझे कण-कणसे 'सत्त्व' को एकत्र कर-कर ही अपने मनका एक महल निर्माण करना है तथा फिर इस समूचे महलके साथ ही गुणोंसे पार उड़ जानेका स्वप्न सजाना है, इस आशासे कि कदाचित् राधारानीकी कृपा ढलक जाय और मेरे ये सुन्दर स्वप्न 'सत्य' के रूपमें परिणत हो जायँ।

राधा-राधा

यह था लिखित संदेश बाबाका कृष्णजीके लिये। इस लिखित संदेशसे पूर्णतः स्पष्ट संकेत मिलता है कि बाबा अपने निज जनोंसे कितनी तत्परता और सतर्कताकी अपेक्षा रखते थे और इसके साथ ही यह भी पूर्णतः स्पष्ट संकेत मिलता है कि उनके आध्यात्मिक 'स्वप्न' कितने महान और लोकोत्तर थे तथा वे यहीं इस भूतलपर कितनी आतुरता पूर्वक श्रीप्रिया-प्रियतमके दिव्य भाव-राज्यके अवतरणके लिये उत्सुक रहे।

* * * * *

श्रीकनकबिहारीजीके दर्शन

एक बार बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) सपरिवार अयोध्याधाम गये। साथमें बाबा थे ही। अयोध्या पहुँचनेपर पूज्या माँने कहा – श्रीसरयूजीमें स्नान करके श्रीकनकबिहारीजीका दर्शन करना चाहिये।

बाबूजीको यह प्रस्ताव पसन्द नहीं आया। इसके पीछे कारण यह था कि पहले ही काफी देर हो चुकी है, अब देरमें देर करनेसे क्या लाभ? स्नान करके फिर कपड़े बदलनेसे इतनी अधिक देर हो जायेगी कि मन्दिरमें पहुँचनेपर श्रीकनकबिहारीजीके पट बन्द मिलेंगे। यदि पट बन्द हो जायेंगे तो बहुत देरतक अयोध्यामें रुकना ही पड़ेगा। इन सब बातोंको सोचकर बाबूजी यही चाहते थे कि दर्शन कर लेनेके बाद स्नान किया जाय, परन्तु पूज्या माँको बिना स्नान किये मन्दिर जाना प्रिय नहीं लग रहा था। माँकी भावनाओंकी गरिमाको बाबूजी मनसे समझ रहे थे, पर अतिकाल हो जानेके भयसे पहले दर्शन कर लेनेकी बात बाबूजी कह रहे थे। जो भी हो, पूज्या माँका आग्रह देखकर श्रीसरयू-स्नानके लिये बाबूजीने सहमति प्रदान कर दी।

स्नानके बाद सभी लोग श्रीकनकभवन गये और बाबूजीको जिस बातकी आशंका थी, वही घटित हो गयी। श्रीकनकबिहारीजीके पट बन्द हो चुके थे। अब दर्शन अपराह्नकालके बाद ही हो सकते थे। कनकभवनके बाहर बरामदेमें बाबूजी बैठ गये और कल्याणके कागजोंका बंडल निकाल लिया प्रूफ देखनेके लिये। पासमें बाबा भी बैठ गये। साथके अन्य लोग अपने खान-पानके क्रममें लग गये। अब प्रश्न था बाबाकी भिक्षाका। बाबूजीने बाबासे पूछा – क्यों बाबा! आपकी भिक्षाके बनवानेका कार्य आरम्भ किया जाये क्या?

बाबाने कहा – मैं तो भिक्षा तबतक नहीं करूँगा, जबतक श्रीकनकबिहारीजीके दर्शन नहीं हो जायेंगे।

बाबूजीने किञ्चित् झुँझलाये स्वरमें बाबासे कहा – पहले ही देरमें देर हो गयी श्रीसरयूजीके स्नानके कारण और अब दर्शनके बाद भिक्षा बनेगी तो फिर न जाने कितनी देर और होगी?